परमजैन चन्द्राङ्गज ठक्कर फेरु विरचित प्राकृत ग्रन्थ

'सिरि वत्थुसार पयरणं'

पर आधारित सम्पादन-संकलन-अनुवादन

जन-जन का
जैन वास्तुसार

Essence of Jain Vastu

सम्पादक-अनुवादक

प्रो. प्रतापकुमार टोलिया - सुमित्रा प्र. टोलिया

पृथ्वी

पानी

अग्नि

आकाश

वायु

श्री शखेश्वर पार्श्वनाथ गिरिराज ट्रस्ट

SREE SHANKHESWAR PARSHWANATH GIRIRAJ TRUST

(Regn. NO. 10 OF 1996)

TEERTH SITE
AMBAPURAM, KRISHNA DT. A.P.

REGD. OFFICE
MATRU - CHHAYA
10-28-1/13, GANGANAMMA TEMPLE ST.
VIJAYAWADA - 520 001. A.P.
☎ (0866) 566159, FAX 0866 - 421339

आदरणीय श्री प्रताप भाई टोलिया, Dt 13.5.98

जयजिनेन्द्र एवं प्रणाम।

[illegible]

[illegible] Electricity [illegible] Plan [illegible]

[illegible]

Certificate of Presentation

This is to Certify that

Prof. Pratap Kumar J. Toliya

has presented a paper/ poster titled

"Cosmos : Cosmic Prana and Vastu"

Prāṇāṇveṣaṇa

14th International Conference, Bangalore
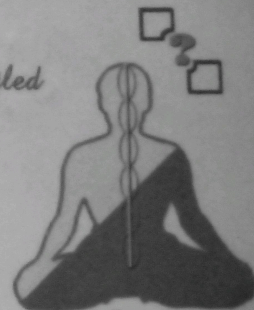
On Dec 18 - 21, 2003
at Prashanti Kutiram
Bangalore, Karnataka, India

ORGANIZED BY

VIVEKANANDA YOGA ANUSANDHANA SAMSTHANA (VYASA)
#19, 'Eknath Bhavan', Gavipuram Circle,
Kempegowda Nagar, Bangalore-560 019, INDIA
Email: svyasa@zeeaccess.com
Web: www.vyasa.org

Sri T MOHAN	Dr H R NAGENDRA
Secretary	President, Conference organising commitee
VYASA	President, VYASA

जन-जन का
जैन वास्तु सार

परमजैन चन्द्राङ्गज ठक्कुर फॅरु विरचित प्राकृत ग्रंथ 'सिरि वत्थुसार पयरणं' :
श्री वास्तुसार प्रकरण पर आधारित सम्पादन - संकलन - अनुवादन

*

*** आशीर्वचन ***

पू. कविमनीषि राष्ट्रसंत आचार्यश्री वास्तु-शिल्पज्ञ जयंतसेनसूरीश्वरजी
दक्षिणभारत के मूर्द्धन्य वास्तुविद् गौरु तिरुपति रेड्डी

*

*** सम्पादक - अनुवादक ***

प्रो. प्रतापकुमार ज. टोलिया,
एम.ए.(हिं.), एम.ए. (अं), साहित्य रत्न
सुमित्रा प्र. टोलिया,
एम.ए. (हिन्दी), संगीत विशारद

(सप्तभाषी आत्मसिद्धि, पंचभाषी पुष्पमाला, आत्मध्यान के अवसर पर आदि
अनेक जैन ग्रंथों के सम्पादक-अनुवादक ; श्री भक्तामर स्तोत्र, आत्मसिद्धि शास्त्र,
महावीर दर्शन, ईशोपनिषद, आत्मखोज, ध्यानसंगीत आदि
अनेक लांगप्ले - कॉम्पैक्ट डिस्क के गायक - निदेशक ;
भूतपूर्व कॉलेज प्रिन्सिपाल एवं प्राध्यापक)

* * * * *

जिनभारती
वर्धमान भारती इन्टरनेशनल फाउन्डेशन
प्रभात काम्पलेक्स, के.जी. रोड, बेंगलोर - 560 009

(M) 9611231580

कृति-कथ्य :

Jan-Jan Ka Jain Vaastu -- जन-जन का जैन वास्तु

Vaastu Science -- वास्तु-विज्ञान

मूल ग्रंथकार : परमजैन चन्द्राङगज ठक्कुर फेरु

आशीर्वाद-प्रदाता:
पू. कविमनीषि वास्तु-शिल्पज्ञ आचार्यश्री जयंतसेनसूरीश्वरजी
दक्षिणभारत के मूर्द्धन्य वास्तुविद् गौरु तिरुपति रेड्डी

सौजन्य-स्वीकार -
राज-राजेन्द्र प्रकाशन ट्रस्ट, रतनपोल, हाथीखाना, अहमदाबाद.

संपादक :
प्रा. प्रतापकुमार ज. टोलिया, सुमित्रा प्र. टोलिया

प्रकाशक : सर्वाधिकार
जिनभारती
वर्धमान भारती इन्टरनेशनल फाउन्डेशन
प्रभात काम्पलेक्स, के.जी. रोड़, बेंगलोर - 560 009

संस्करण : प्रकाशन वर्ष : 2009
प्रथम आवृत्ति - 1000 प्रतियाँ

टाइपोसेट एवं आवरण चित्र :
श्री अंशुमालिन् शहा,
इम्प्रिन्ट्स, बेंगलोर-4

मुद्रक :
सी.पी. इनॉवेशन्स,
किलारी रोड़, बेंगलोर-53

मूल्य : अग्रिम आरक्षण : 5 प्रतियों के लिए रू.1111/=
प्रकाशनोपरांत : रू. 251/= मात्र

ISBN No. 81-901341-10

मूल गुजराती आवृत्ति का -

प्रारम्भिक आशीर्वचन

संपूर्ण विश्व आकारमय है। साकार है। समस्त वस्तुएँ आकारमय हैं। आकार दृश्यमान जगत का दर्शन कराता है। दृश्यमान जगत के पीछे भी एक निश्चित विधा रही होती है।

यह विधा वस्तु के स्वरुप एवं विरुप का ज्ञान कराती है।

विधाओं का विधान करने वाली एक शैली है, एक शास्त्र है।

विविध विधाएँ स्थित हैं विश्व के प्रांगण में! इस दृश्यमान साकार वस्तुविधा का विज्ञान समझानेवाला है शिल्पशास्त्र, जिसके मार्गदर्शन से निर्मित होनेवाली प्रत्येक भव्य इमारत ऐतिहासिक स्वरुप धारण करती है।

ये इमारतें जिनालय, देवालय, गृहस्थालय, विद्यालय, औषधालय, सचिवालय, मुख्यालय आदि विविध नामों से जानी जातीं हैं।

इन तमाम इमारतों में से जिनालय, देवालय तथा गृहनिर्माण के कार्य में पर्याप्त सावधानी रखना आवश्यक होता है। आय, नक्षत्र, गण, भूमिपरीक्षा तथा दिशादर्शन का संपूर्ण ध्यान रखना अनिवार्य होता है।

अगर इन बातों का उचित ध्यान रखा न जाय तो निर्माता अथवा शिल्पी के लिए दोषकारक बनता है। इसीलिए शिल्पशास्त्र भी भारतीय विधाओं की एक अनुपम देन है।

नाप-तोल के साथ जब शिल्प सम्मत उन भव्य भवनों का निर्माण होता है तब वे भवन हजारों वर्षों तक उन्नत खड़े रहकर असंख्य जीवों के लिए प्रेरणादायक बने रहते हैं। उन्हें प्रेरणा देते रहते हैं।

कई बार शिल्प के नियमों का उल्लंघन हो जाने के कारण लाखों रुपये खर्च करके निर्मित किये गये भव्य भवन उदास खड़े दिखाई देते हैं। और इसके विपरीत उन नियमों के संपूर्ण पालन के कारण वर्षों तक जीवंत प्रेरणा बन कर उनकी स्मृति दिला जाते हैं।

सिद्धाचल के दिव्य जिनालय, आबु की अद्भुत कलाकृतियाँ, राणकपुर तथा भद्रेश्वर के जिन भवन, कुंभारियाजी तथा स्वर्णगिरि के गगनचुंबी मनोहर प्रासाद शिल्प कला की जीती जागती तस्वीरें हैं।

शिल्प जगत में वर्तमान समय में ''मांडणी राणकपुर की, कोरणी आबु की'' - कहावत अत्यंत प्रसिद्ध है। शिल्पकार के मनोभाव जब साकार रूप धारण करते हैं तब 'शिल्प की दुनिया कितनी अनुपम है!' इसका अनुभव होता है।

भवन निर्माण की प्रक्रिया को समझानेवाले शिल्प से संबंधित अनेक ग्रंथ विश्व में विद्यमान हैं जिनमें ठक्कुर फेरुकृत प्रस्तुत वास्तुसार ग्रंथ सर्वजन समाहित मौलिक

ग्रंथ है, जिसकी हिंदी-गुजराती अनुवाद सह आवृत्तियाँ समय समय पर प्रकाशित होती रहीं हैं।

प्रस्तुत प्रकाशन जयपुर निवासी पंडित भगवानचंद जैन द्वारा किया गया गुजराती अनुवाद है। यह ग्रंथ अप्राप्य था तथा उसकी आवश्यकता प्रतीत हो रही थी। प्रकाशन ट्रस्ट की ओर से इस ग्रंथ का प्रकाशन आवकार्य है। सुकृत सहयोगी की ज्ञानभक्ति अनुमोदनीय है।

- आचार्य विजय जयंत सेन सूरि, "मधुकर"

आणंद, गुजरात,
वैशाख शुक्ल वि.सं.2046 (ई.स. 1989)

जनजन का वास्तु -

पंच महाभूत भी प्रत्यक्ष रवि-शशिवत्

" प्रत्यक्ष है रवि व चंद्र, प्रत्यक्ष है वायु, अग्नि और पानी,
प्रत्यक्ष है भू-देवी (धरती), प्रत्यक्ष है सकल विश्व, सुन रे 'वेमा' ! "

- तेलुगु कवि वेमना (17 वीं शती)

जब पंच महाभूत प्रत्यक्ष हैं, सभी प्राणियों के आधाररूप हैं, तब उनका प्रभाव भी प्रत्यक्ष है। उनका यह प्राकृतिक, सहज प्रभाव ही वास्तुविज्ञान का आधार है।

वास्तु पुरुष का ध्यान -

" वास्तुदेव नमस्तेऽस्तु भूशय्या निरत प्रभो
मद्गृहान् धन धान्यादीन् समृद्धिं कुरु संपदां।
महा मेरुगिरिस्सर्वदपानमालयो यथा
तद्वद्बलादि देवान् मम गेहे स्थिरो भव॥ "

(हे वास्तुदेव! तुम्हें नमस्कार है। तुम सदा भूमि पर शयन करते हो। तुम हमारे गृहों को धन-धान्यादि से एवम् संपदा से समृद्ध बनाओ। जैसे महा मेरु गिरि सर्व देवताओं का आलय है वैसे ही ब्रह्म आदि देव मेरे गृह में स्थिर रहें, ऐसे आशीर्वाद दो।)

- (संकलित)

* ग्रंथ समर्पण *

'आपका आपको ही समर्पण'
के भाव से
दो वास्तु मार्गदर्शक उपकारकों

कवि-मनीषि वास्तु-शिल्पज्ञ आ.श्री जयंतसेनसूरीश्वरजी
एवं वर्तमान वास्तुविद् श्री गौरु तिरुपति रेड्डी

तथा

वास्तु दोषों के निवारण एवं
शुद्ध वास्तु ज्ञान संपादन के इच्छुक
प्रत्येक जन एवं जैन आराधक आत्माओं को

प्रस्तुत कृति के लिए आशीर्वचन :

"भाई प्रतापकुमारजी टोलिया ने इस कृति का हिन्दी अनुवाद एवं पुनः सम्पादन किया है, एतदर्थ हमारी ओर से उनके कार्य हेतु हार्दिक अभिनन्दन एवं आशीर्वाद हैं ।"

—[signature]
30/8/2008

॥ ॐ अर्हम् ॥

जन जन का जैन वास्तु

श्रमण जैन परम्परा और वास्तु शास्त्र

आत्मा को भौतिक धरातल से ऊपर उठाकर, सिद्धशिला की उन्मुक्त अरुपी अवस्था की अलौकिक दिव्यसृष्टि तक पहुँचाने की समग्र प्रक्रिया को दर्शाने वाली चैतन्य तत्त्व प्रधान अर्हत्-भाषित श्रमण जैन संस्कृति की परम्परा में जड़ तत्त्व प्रधान भौतिक भित्ति के पंचमहाभूत आधारित ऐसे वास्तुशास्त्र-वास्तु-शिल्प-स्थापत्य विज्ञान का भी बहुत बड़ा योगदान रहा है।

वैदिक ब्राह्मण संस्कृति की परम्परा में निहित वास्तुशास्त्र की महत्ता और स्थान से श्रमण जैन परम्परा का वास्तुस्वरुप और स्थान महदंश में पंचभूतादि के समान आधार के उपरान्त कुछ भिन्न, विशिष्ट और अनेक दृष्टियुक्त भी रहा है। इस विषय में गहन अध्ययन, संशोधन एवं विश्लेषण की आवश्यकता है। इससे जैन सांस्कृतिक परम्परा की वास्तु-महत्ता पर नया प्रकाश पड़ेगा और जनसामान्य को यह उपयोगी, उपादेय सिद्ध होगा - विशेषकर भारतीय संस्कृति की विश्वोपकारकता श्रमण - जैन एवं ब्राह्मण - वैदिक दोनों परम्पराओं में निहित होने के कारण।

आर्हतों की इस श्रमण जैन सांस्कृतिक परम्परा में तो विश्वसमस्त की सारी जीवनकलाओं के, समग्र विद्या-विज्ञानों के, वास्तु-शिल्प-शास्त्र आदि सारे ही विषय भरे पड़े हैं। किन्तु इन उपकारक जीवन-विद्याओं का एक अधिकांश बड़ा हिस्सा आज कालक्रम एवं कालबल की महिमा के कारण विलुप्त एवं गुप्त हो चुका है। जैन ग्रंथों के अध्येताओं को यह सुज्ञात ही है कि असंख्य जैनविद्याओं एवं जीवन-रहस्यों के अक्षय महाकोष ऐसे 14 पूर्वों का ज्ञान एवं अस्तित्व आज प्रायः लुप्त है। प्राप्त और प्रवर्त्तमान शेष जैन ग्रंथों - महाग्रंथों में से हमें आज जो उपलब्ध है, वह अंशमात्र है। उनमें से भी कई अप्राप्य होने के उपरान्त कई 'विदेश-गति' प्राप्त हुए हैं, तो कई जैन पुरातत्त्व भंडारों में अस्पृष्ट-से पड़े हैं। इतना सब होते हुए भी जैन सांस्कृतिक परम्परा में, आंशिक रुप से ही सही, अब भी वास्तुशास्त्र के कई मूल्यवान रहस्य, कई उपयोगी सुवर्ण-सिद्धांत और कई अनमोल वास्तुशिल्प स्थापत्य प्रासाद विद्यमान हैं।

इन जैन प्रासादों - चैत्यालयों-मंदिरों-जिनालयों का पूर्ण वास्तु आधारित शिल्प विधान इस तथ्य का जीता जागता उदाहरण है। वास्तु सिद्धांत एवं विज्ञान की ठोस भित्ति के आधार पर निर्मित होने के कारण ही तो भारतभर में लहराते हुए उत्कृष्ट शिल्प कलामय चैत्यालय एवं जैन तीर्थ सुदूर अतीत से चिरंजीवी बनकर, जिनेश्वरों की रागद्वेषातीत प्रशमरस पूर्ण, ध्यानस्थ, वीतरागमुद्राधारक जिनप्रतिमाओं द्वारा

सर्वजग-कल्याणकारी शांति-संदेश, अपने मौन को मानों मुखरित कर, युगयुगों से देते आये हैं और देते रहेंगे।

जैन वास्तु-शिल्प का यह कोई कम चमत्कार है? कोई कम प्रभाव है?

जिनालयों के वास्तु-विधान के समान ही जैन श्रावकों के गृहों-आवासों भवनों का भी अत्यन्त सुंदर विधान आज जैन सांस्कृतिक परम्परा के थोड़े से उपलब्ध जैन वास्तुग्रंथों में मौजूद है। दूरदर्शी जैनाचार्यों ने पूर्वोक्त चौदहपूर्व-निहित इस अतिगंभीर, महामूल्यवान विषय के ज्ञान को भी यथोपलब्ध, यत्किंचित् स्वरुप में तो सम्हाले हुए रखा है। इस विषय में अनुपलब्ध महदंश के ग्रंथों के बीच से भी कुछ थोड़े-से उपलब्ध ग्रंथ हैं, ''श्री भगवती सूत्र'' के कुछ अंश ''सूत्रकृतांग का उपांग ऐसा ''रायपसेणीय सूत्र'' (राजप्रश्नीय सूत्र), ''धर्मबिन्दु'', ''वास्तुप्रकरणसार'', ''आरम्भसिद्धि'', ''Jain Art & Architecture'' एवं अन्य अनेक।

जैनदर्शन की सर्वग्राही समग्रता, गहनता एवं स्याद्वादी-अनेकांतवादी भूमिका के कारण इन वास्तु-सम्बन्धित उल्लेखों से भरे उपर्युक्त एवं अन्य ग्रन्थों में निहित कुछ सामग्री वैदिक परम्परा के ग्रंथों से मौलिक-विशिष्ट है और कुछ विराट भारतीय संस्कृति की प्राकृतिक समानता के कारण एक-सी। इस तुलनायोग्य, संशोधनयोग्य पक्ष को यहाँ छोड़कर, उक्त उपलब्ध जैनग्रंथों की वास्तुशास्त्रीय उपयोगिता, जन-जन की जनोपयोगिता के ऊपर हम आयेंगे।

वास्तु की जन जन की जनोपयोगिता एवं वर्तमान वैज्ञानिकता

श्रावकों-गृहस्थों-आमजनों के निवास किस प्रकार निर्मित और प्रायोजित हों - जिससे कि उनकी जीवन साधना में - व्यावहारिक उपलब्धियां एवं पारमार्थिक विकास में सम्बल मिल सके - इस विषय में इन जैन ग्रंथों से बहुत उपयोगी मार्गदर्शन मिलता है और यह न तो वैदिक परम्परा के ग्रंथों के, न वर्तमान वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विरोध में है। ''अविरोध'' की, समन्वय की, स्याद्ववाद - अनेकांतवाद की यह भूमिका जैन परंपरा की विशिष्टता है, क्योंकि वह सारग्राही अनेकांतवाद की भूमिका पर खड़ा है। परन्तु अविरोध की सर्वसामान्य समानता के उपरान्त जैन परम्परा के ग्रंथों में अपनी सूक्ष्मता और सर्वांगीण समग्रता के कारण जो विशिष्ट मौलिकता रही है वह अदभुत, दर्शनीय, मंगलकारी एवं सारे ही समाज के हित के लिये उपकारक एवं उपादेय है।

इस मौलिक भिन्नताभरी विशिष्टता का जब वर्तमान विद्वान् मनीषि, गीतार्थ आचार्य पूर्वोक्त इंगित के अनुसार तुलनात्मक, खुला, अध्ययन - संशोधन करेंगे तब विशाल जनसमाज एवं दुःखाक्रान्त जगत के लिये वह नये रुप में उपयोगी एवं उपकारक सिद्ध होगा। जगत को शांतिपथ, अहिंसा पथ, आत्मसाक्षात्कार का पथ

प्रदान करनेवाली जैन परम्परा की ओर से ठोस धरातल पर वास्तविक-व्यावहारिक जीवन सही ढंग से, सुसंवादी ढंग से, सकारात्मक ढंग से जीने के, आवासीय जीवन की सुख-शांति-समृद्धि-निरामयता पाने के उपक्रम में यह बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रदान होगा।

दुःखीजनों का दुःखनिवारण एवं सर्व का कल्याण

आख़िर यह विश्व-कल्याणकामी श्रमण संस्कृति-परम्परा यही तो चाहती है न कि -

''शिवमस्तु सर्व जगतः परहितनिरता भवन्तु भूतगणाः।
दोषाः प्रयान्तु नाशं सर्वत्र सुखी भवन्तु लोकाः॥''

तो भारत की दूसरी परम्परा, वैदिक ब्राह्मण परम्परा भी तो यही मंगलकामना करती है कि -

''सर्वेऽत्र सुखिनो सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित् दुःख भाग् भवेत्॥''

और

''कामये दुःखतप्तानां प्राणीनामार्त्तिनाशनम्॥''

तो इन दुःखतप्तों के, मनुष्यों के दुःखो के एक प्रधान कारण ऐसे अज्ञान का, गलत गृहवास्तु सम्बन्धित अज्ञान का, जड़मूल से ही निर्मूलन करने के लिये यह उपक्रम उपयोगी - उपकारक - उपादेय सिद्ध होगा। *सर्वांगीण, समग्रताभरी दृष्टि से लिखने को प्रवृत्त, प्रयत्नशील ऐसे इस पंक्तिलेखक का आधार है - वर्षों का स्वयं का अध्ययन-अनुचिंतन, गुरुगम एवं विभिन्न ग्रंथ। इन आधारों पर संपन्न अपने स्वानुभव प्रयोगों के पश्चात् यह वास्तु-निष्कर्ष-विमर्श प्रस्तुत किया जा रहा है।

अध्ययन- इस उपक्रम में अन्य ग्रंथों के प्रदानों को जोड़ना अभी शेष और सुरक्षित रखते हुए, हम जैन वास्तुशास्त्र की प्राचीन परंपरा के एक वैज्ञानिक सिद्धांतग्रंथ पर आयेंगे। यह उल्लेखयोग्य, अध्ययन-अनुशीलन योग्य उपकारक ग्रंथ है ''वास्तुसार प्रकरण'' अथवा ''वास्तुप्रकरणसार''। करनाल-दिल्ली के ठक्कुर चंद्र सेठ के विद्वान सुपुत्र परमजैन श्री ठक्कुर फेरु ने विक्रम संवत् 1372 के वर्ष में (आज से सात सौ वर्षों पूर्व) अलाउद्दीन बादशाह के समय में दिल्ली शहर में रहकर इस ग्रंथ की

---

*''राग-द्वेष-अज्ञान ये, कर्म-ग्रंथि भव ग्राह। जासों तास निवृत्ति हो, रत्नत्रयी शिवराह॥''
(आत्मसिद्धिशास्त्र हिन्दी अनुवाद श्री सहजानंदघनजी)

''राग, द्वेष, अज्ञान ए मुख्य कर्मनी ग्रंथ। थाय निवृत्ति जेहथी, ते ज मोक्षनो पंथ॥''
(100: मूल गूजराती : श्रीमद् राजचन्द्रजी)

रचना प्राकृत भाषा में की है। अन्य अनेक प्राचीन ग्रंथों के आधार पर गहन अध्ययन के बाद इस ग्रंथ को, जैन-जन ही नहीं, जन-सामान्य पर भी उपकार करते हुए इस महामना लेखक द्वारा सदा काल के लिये यह उपयोगी ग्रंथ निर्मित किया गया। इस ग्रंथ की हिन्दी - गुजराती आवृत्तियाँ भी अनुपलब्ध हो गईं। वर्तमान युग में इसकी उपयोगिता हमारे क्रान्तदर्शी आचार्य श्री जयन्तसेनसूरीश्वरजी (''मधुकर'') की दृष्टि में दिखाई दी।

उन्होंने लोक संग्रह-लोकोपकार की महत्ती भावना से इसके पुन: प्रकाशन की प्रेरणा देकर राज-राजेन्द्र प्रकाशन ट्रस्ट द्वारा यह ग्रंथ वि.सं. 2046 (ई.सन 1989) में 'वास्तु सार प्रकरण' के नाम से पुन: प्रकाशित करवाया।

निजानुभव एवं वास्तु - गुरुजनों का उपकार :-

प्रस्तुत प्रकाशन के कुछ समय पश्चात् पूज्य आचार्यश्री का बेंगलोर में पधारना हुआ। उन दिनों अनेक बाह्य संघर्षों एवं प्रतिकूलताओं के बीच से भी सद्गुरुकृपा से चल रही हमारी अंतर साधना एवं साहित्य-संगीत सृजना के बीच एक सांकेतिक सानंदाश्वर्यवत् पूज्य आचार्यश्री ने हमें यह उपकारक ग्रंथ प्रदान किया। तब हमने आपके द्वारा लिखित ''ॐ नमो अरिहंताणं'' एवं ''जय जिनराज प्रभो'' आदि कई पद स्वरस्थ कर रिकार्ड किये थे और दूसरी ओर से हमारे अपने 'अनंत' बिल्डिंग के वास्तु-दोषों के दुष्परिणामों से हम गुज़र रहे थे।

इस पश्चाद्भूमि में संप्राप्त, ठीक समय पर संप्राप्त, इस ग्रंथ के अध्ययन ने गृहस्थ-श्रावक के रुप में हमारे उपर्युक्त स्थान के निवास की क्षतियाँ दीखला दीं, हमारे अवरुद्ध विकास और 'सतत पुरुषार्थ के होते हुए भी हो रहे हमारे अनेक नुकसानों'' की ओर स्पष्ट रुप से इंगित किया और हम स्तम्भित से रह गये। इस एक ग्रंथ के प्रथम अध्ययन ने हमारे खोज-द्वार को खोल दिया। प्राचीन-अर्वाचीन अनेक भाषी वास्तु-ग्रंथों का हमारा अध्ययन और प्रयोग-चिंतन चला। अनेक वास्तु-विद्वानों के सम्पर्क में हम आये, अनेक वास्तु-सम्मेलनों, परिसंवादों में हम पहुँचे और इन सभी प्रयासों एवं कष्टप्रद स्वगृह के वास्तुदोषों के दर्शनों से इस उपकारक ग्रंथ की प्रामाणिकता और सार्थकता सिद्ध हुई। फिर तो स्वयं पूज्य आचार्यश्री जयंतसेनसूरीश्वरजी भी हमारे उक्त वास्तुदोष-पूर्ण स्वगृह निवास पर कृपाकर पदार्पण करने पधारे और ग्रंथ-निदर्शित वास्तुदोषों की प्रायोगिक पुष्टि की। उनके पश्चात् दक्षिण भारत के वर्तमान वास्तुविद् श्री गौरु तिरुपति रेड्डी, कि जिनके साथ अनेक स्थानों पर प्रत्यक्ष वास्तु निरीक्षण पर जाने का प्रायोगिक शिक्षा लाभ हमें मिला, हमारे उक्त निवास पर आकर पूज्य आचार्यजी कथित और स्वयं दर्शित वास्तुदोषों की पुष्टि कर गये।

ग्रंथोपकार :-

इन सभी के मूल में रहे हुए इस ग्रंथ का इतना उपकार और प्रभाव हम पर रहा कि इस विषय में हम दिनों-दिन गहरे उतरते गये, विद्वान् प्रोफेसर डॉ. जितेन भट्ट जैसे पिरामिड-वास्तुविदों के भी परिचय में हम आये और जब हमारे उपर्युक्त ''अनंत'' बिल्डिंग निवास का इच्छित वास्तुपरिवर्तन सम्भव न होकर लटकता रहा तब हमने अपना निवास ही वहाँ से इस कुछ अधिक वास्तु-अनुकूल भवन (''पारुल'') में बदल दिया।

यह सारा स्वानुभव हम इस लिये यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं कि यह ग्रंथ हमें वास्तुदोषों-जनित गृहकष्टों के निवारण में प्रायोगिक रुप से कितना निमित्त रुप बना है और प्राचीन वास्तु की वास्तविकता कितनी वैज्ञानिक एवं सर्वकालीन-सर्वदेशीय है यह सिद्ध हो सकें। इस के अध्ययन से हमें जो लाभ प्राप्त हो रहा है वह सारे जग-जन को भी वास्तु-दोष निवारण से हो यह हमारी मंगल भावना रही है। अतः हमारे स्वानुभव एवं गुरुजन-ज्ञान से प्रमाणित इस उपकारक वास्तु-ग्रंथ को सार रुप में कई समय से प्रकाशित करने की हमारी जो भावना थी वह अब गुरुकृपा से साकार होने जा रही है। यहाँ पर इस ग्रंथ को आधारभूत बनाकर, अन्य अध्ययनों को भी साथ में जोड़ते हुए सार रुप में, जन-सामान्य के भी निजी उपयोग-मार्गदर्शन हेतु हम प्रस्तुत कर रहे हैं - इसमें प्रधान ग्रंथ का अनुवाद ही नहीं, यथास्थान में सार-संकलन और संक्षेपीकरण करते हुए सुस्पष्ट सम्पादन का हमने प्रयास किया है। यथासम्भव सरल, आधुनिक रुप में देने के हमारे इस प्रयास में मूल सिद्धांतों को तो हमने यथावत् ही रखा है। ग्रंथ में सर्वजनोपयोगी गृहादि वास्तु, प्रतिमा पूजकों के लिये प्रतिमा-मान और महिमा और जिनालयों-जिनप्रासादों के निर्माता धन्यभाग्य महानुभावों के लिये संपूर्ण शिल्प-वास्तु-विज्ञान प्रस्तुत किया गया है। आशा है, यह सभी को उपयोगी, उपकारक, उपादेय सिद्ध होगा। हमारी यह विनम्र भावना है कि प्रत्येक जन को किसी-न-किसी रुप में इसमें से कोई न कोई बात उपादेय - अपनाने योग्य प्रतीत नहीं हुई, तो हम हमारा सृजन-श्रम निष्फल, निरर्थक समझेंगे। परन्तु इससे विपरीत हमें पूर्ण श्रद्धा है इस श्रम के सर्वजनोपयोगी बनने की। हमारे प्राचीन-अर्वाचीन दोनों मार्गदर्शक पू.आ.श्री जयंतसेनसूरीश्वरजी एवं वास्तुविद् श्री गौरु तिरुपति रेड्डीजी हमें आशीर्वाद प्रदान ही नहीं, हमसे वर्षो से आशा-अपेक्षा भी रखे हुए हैं कि इस ग्रंथ को हम शीघ्र प्रकाशित करें। विशेषकर इस परिस्थिति में जब स्व. ठक्कर फॅरू रचित पूर्वोक्त मूल ग्रंथ ''वास्तु प्रकरण सार'' अभी उपलब्ध नहीं है और उसका इन्हीं वास्तु शिल्पज्ञ आचार्यश्री द्वारा संपादित नूतन संस्करण भी अभी उपलब्ध नहीं है । अत: इसी का पूरा आधार लेकर निर्मित किये गये इस अभिनव स्वरुप के हिन्दी अनुवाद एवं सम्पादन के प्रकाशन की

अनुमति एवं आशीर्वाद के लिए हम पूज्य आचार्यश्री एवं राज-राजेन्द्र ट्रस्ट का हृदय से अनेकशः आभार मानते हैं। आशा ही नहीं, अपितु विश्वास है कि यहाँ कहे अनुसार यह अभिनव प्रकाशन प्रत्येक जैन के उपरान्त सर्वजन सामान्य को - जन-जन को भी अवश्य ही सुख-शांति-स्वास्थ्य एवं सर्वसिद्धि प्रदाता सिद्ध होगा। इसीलिए इसे "जन-जन का जैन वास्तु सार" शीर्षक दिया गया है। इस नूतन संस्करण में अनेक अन्य साधु-साध्वियाँ और श्री विक्रम गुरुजी, जैन मित्रों, छात्र-छात्राओं की आशा अपेक्षाएँ भी सम्मिलित हैं। हम इन सभी के, विशेषतः प्रथम दो मार्गदर्शकों के, अत्यन्त आभारी हैं और आभारी हैं इस ज्ञान प्रकाशन के सुकृत सहयोगियों के। विशेषकर सी. पी. इनोवेशन के श्री वि. चन्द्र प्रकाश एवं इम्प्रिन्ट्स के श्री अंशुमालिन् शहा को हम उनके परिश्रमपूर्ण मुद्रण सहयोग के लिए हृदय से धन्यवाद ज्ञापित करते हैं। इन सब के मंगलभावों से जग-जन तक पहुँचने की, सर्वजीवों को शासनरसिक बनाने की भावना सिद्ध होगी।

सत्पुरुषों का योगबल विश्व का कल्याण करे।

प्रा. प्रतापकुमार ज. टोलिया
श्रीमती सुमित्रा प्र. टोलिया

दि. 27.04.2009

'पारुल', 1580, कुमारस्वामी ले आऊट
बेंगलोर - 560 078
फोन : 080 - 2666 7882/65953440

अनुक्रमणिका :

जन जन का वास्तु - जैन वास्तुसार

'वास्तु' शब्द का सीधा सादा सरल अर्थ है - वास करना, बसना, निवास। 'वास्तुशास्त्र' या 'वास्तुविद्या' का अर्थ है - मकान बांधने की विद्या, कला, विज्ञान या स्थापत्य (The science or art of building a house)। इसी 'वास्तुकला' को हम वास्तु-शिल्प और स्थापत्य के (Art and architecture) नाम से भी जानते हैं।

आप, हम, सभी, प्रत्येक जन, कहीं न कहीं बसते ही हैं, कहीं न कहीं अपना कार्य करते ही हैं। वह स्थान फिर छोटी-सी कुटिया हो या बड़ा विशाल महल।

अपनी यह काम करने की जगह कैसी होनी चाहिये? कहाँ बनी होनी चाहिये? किस प्रकार बनी हुई होनी चाहिये?

वह सही दिशा में, सही-शुद्ध-स्थान पर, सही रुप में बनी होनी चाहिये न? वह सुंदर, कलात्मक, शांति-शातादायक रुप में सजायी गई होनी चाहिये न?वह सुव्यवस्थित प्राकृतिक ढंग से रखी गई, दर्शित की गई चाहिये न?

ये सारी बातें स्पष्ट और वैज्ञानिक तरीके से बतलाता है वास्तु, वास्तु की विद्या, वास्तु का शास्त्र, वास्तु नियमों से युक्त वास्तुविज्ञान।

उसे विद्या कहें, कला कहें, विज्ञान कहें, शास्त्र कहें - कुछ भी कहें, वह है बसने का - रहने का सही स्थान और सही, समुचित सुचारु ढंग। प्रकृति के व्यवस्था - नियमों का वास्तविक तरीका। वह 'विज्ञान' विशेष-ज्ञान ही है और कुछ नहीं।

यह सारा का सारा हमारे आर्ष-दृष्टा ऋषियों ने, अर्हत् जिनों ने प्राचीन काल से लेकर अर्वाचीन काल तक, आज तक बतलाया है - वास्तु शास्त्र वास्तु कला-शिल्प स्थापत्य, वास्तु विद्या, वास्तु विज्ञान के नाम से। मानव संस्कृति के आदि पुरस्कर्त्ता भगवान आदिनाथ ने ही प्रथम इसे स्थान दिया अपनी 72 एवं 64 कलाओं में।

वास्तव में ये वास्तुविद्या-नियम प्राकृतिक-प्रकृति आधारित हैं। वे प्राचीन भी हैं, अर्वाचीन भी, शाश्वत-सनातन भी हैं, नित्य नूतन भी। इसलिये कि ये प्रकृति के तत्त्वों क्षिति-जलादि पांच तत्त्वों - पांच महाभूतों पर आधारित हैं। प्रकृति तब भी थी, अब भी है। प्राचीन काल में भी थी, वर्तमान काल में भी है और भविष्य काल में भी रहेगी।

प्रकृति को समझकर, उसके नियमों को अपनाकर, उसके उपयोग-विनियोग को हम सही ढंग से काम में लायेंगे तो प्रकृति हमें सुख-स्वास्थ्य-शांति-शाता-समता-संवादिता-सकारात्मकता प्रदान करेगी और नहीं समझने - अपनाने से इन सब से विपरितता।

इसके लिये जिम्मेवार हम ही होंगे, प्रकृति नहीं, प्रकृति व्यवस्था नहीं। इन प्रकृति-नियमों को नहीं जानना, यह अज्ञान और जानते हुए भी नहीं अपनाना, यह हमारा अक्खड़पन - हमारी लापरवाही हमें विपरीत फल - उल्टे परिणाम तो देंगे ही।

किसी विषय के अज्ञान को भी ज्ञानियों ने कर्मबंधन और दुःख का एक प्रधान कारण बताया है न?

अतः प्रथम तो प्रकृति, प्रकृति-व्यवस्था विषयक इन नियमों को हम समझें, जानें, इस अज्ञान को हम दूर करें - प्राकृतिक पंच तत्त्वों - पंचभूतों के वास्तु-नियमों को हम जानें और फिर उन्हें अपनायें, उपयोग में लायें, क्रियान्वित करें।

प्रकृति-आधारित वास्तु के जीवन-उपकारक विज्ञान द्वारा यह सब यहाँ दर्शाया और समझाया गया है। इनकी अनदेखी या उपेक्षा हम न करें। जन जन के लिये, आप-हम-सभी-प्रत्येक व्यक्ति के लिये, यह उपकारक और उपयोगी होनेवाला है। इसके प्रकाशन में सहयोगी सभी ही शुभ ज्ञानार्जन-लाभ पाने वाले हैं।

आयें, हम इसे जानें, अपनायें और हमारे जीवन को सुख-स्वास्थ्य-शांत और संवादमय बनायें।

भारतीय संस्कृति की संस्कार-धारा में यह विज्ञान, यह शास्त्र सुदीर्घकाल से फला, फूला, फाला है और उसका कुछ उपयोगी अंश तो आज विलुप्त, विस्मृत या परिवर्तित रुप भी धारण कर चुका है।

ऊपर संकेत किये अनुसार मानव संस्कृति के आदि प्रणेता प्रथम जैन तीर्थंकर भगवान आदिनाथ ने इसे अपने द्वारा प्रशिक्षित ऐसी अनेक जीवन कलाओं में स्थान दिया था। उसके बाद तो काल के प्रवाह में वह बहता चला, दूर-सुदूर जाकर अन्य नव-नव रुपों में भी आकार लेता हुआ फूलता-फालता रहा। अन्य अनेक भारतीय संस्कृति के विदेशों में परिचर्चित रूपों की भाँति शायद यह वास्तु-विज्ञान भी आज पूर्व के चीन-जापान आदि देशों में जाकर 'फेंगशुई' जैसी उपकारक जीवन-कला के नवीन रुप में आया है। इसका और ऐसे अनेक विषयों का अन्वेषण संशोधन किया जाये तो जनजन के जैन वास्तु विज्ञान के कई रहस्य, कई उपकारक प्राचीन सत्य उद्घाटित होंगे। अस्तु! जनजन का यह जैन वास्तु सर्वजनोपयोगी बनें, सर्व का शिवकर बनें यह प्रार्थना-

'शिवमस्तु सर्व जगतः।'

ॐ शांतिः ।

जैन वास्तुसार वास्तव : वास्तुविमर्श - निष्कर्ष

"Essence of Jain Vaastu"

वास्तु की वैज्ञानिकता : वास्तविकता

'वास' अर्थात् (वास्तु=) जहाँ हम निवास या कार्य करते हैं उस भवनादि में प्रकृति के पांच तत्त्वों / महाभूतों (क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा) का विवेकमय विनिवेश, व्यवस्था, यथास्थान-यथोचित स्थान पर स्थापना करने से सम्बन्ध रखता है वास्तु।

यह विनिवेश, यह वास्तु-विन्यास, ठीक ढंग से, सही स्थान पर, समुचित रुप से हो तो इन पांचों प्राकृतिक तत्त्वों का संतुलन बना रहता है। इससे जीवन में (बसने वाले के) सुख, समता, शांति, स्वास्थ्य, संवादिता, सकारात्मकता, समृद्धि आदि का प्रवाह बना रहता है। सूर्यप्रकाश, शुद्धवायु, निर्मलजल, उन्मुक्त आकाश, ऊर्वरा एवं स्थिर-सशक्त धरा आदि पंच महाभूत के प्राकृतिक तत्त्वों के द्वारा वैश्विक ऊर्जा Cosmic Energy का अपने निवास-भवन में सही मार्ग से, सही दिशा से, बिना अवरोध - अंतराय के, आवागमन एवं संस्थापन - स्थिरीकरण बना रहता है। वास्तु विनियोग दृष्टि इसमें कारणभूत है।

यह सारी नैसर्गिक-प्राकृतिक प्रक्रिया वास्तविक, सहज और वैज्ञानिक है। अतः ''वास्तु'' यह एक ''यथार्थ विद्या'' है, ''विज्ञान'' है, सृष्टि के संरचना, शिल्प-स्थापत्य आदि नियमों पर आधारित ''गणित'' का एक ठोस धरातल है। वह कोई 'वहम' या अंधश्रद्धा' या ''मनगढ़न्त विद्या'' नहीं हैं।

आदिमानव के गुफाओं के, तरुतलों के, कुटिर-झोपड़ियों के वास से लेकर आधुनिक मानव के छोटे-बड़े मकानों-भवनों-एपार्टमेन्टों में वास तक और विविध, आलयों, मंदिरों, शिल्पकलाकृतियों के निर्माण तक वास्तुशिल्प का अनेकविध, बहुमुख विकास हुआ है।

वैज्ञानिक वास्तु का, वास्तु की वैज्ञानिकता एवं प्राकृतिकता को केन्द्र में, दृष्टि में, रखकर यहां हम इस ग्रंथ में मनुष्य, सर्वसामान्य मानव, आम जन के लिये उपयोगी ऐसे गृह या कार्यस्थल के वास्तु का चिंतन-अध्ययन-विमर्श करेंगे। स्थलमर्यादा के कारण संक्षेप में, मुद्दों की सूत्र शैली में और बाद में विस्तार से।

सर्वांगीण, समग्रता भरी दृष्टि से लिखने को प्रवृत्त प्रयत्नशील ऐसे इस लेखक का आधार है- वर्षों का स्वयं का अध्ययन, अनुचिंतन, गुरुगम एवं विभिन्न ग्रंथ । इन आधारों पर सम्पन्न अपने स्वानुभव प्रयोगों के पश्चात् यह वास्तु-निष्कर्ष-विमर्श प्रस्तुत किया जा रहा हैं ।

वास्तु अध्ययन संक्षेप

(Studies in Vaastu)

ऐशान्यां देवतागेहं, पूर्वस्यां स्नानमंदिरम्, आग्नेयां पाकसाधनं, भंडागारमुत्तरे।

आग्नेयपूर्वयोर्मध्ये आज्यगेहं प्रसास्तते, यम्यनैऋत्ययोर्मध्ये पुरीशत्यागमंदिरम्

नैऋत्याम्बुपायोर्मध्ये विद्याभ्यासस्य मंदिरम्, पश्चिमनिलयोर्मध्ये, रोधनार्थं गृहं स्मृतम्॥

✻ अति संक्षेप सार ✻

✻ घर की पूर्व दिशा में करें सिंहद्वार - प्रवेश मुख्य द्वार - स्नानालय भी।
✻ दक्षिण (पश्चिम की ओर) में करें शयनस्थान। (B)
✻ उत्तर में धन, कुबेर, संग्रह, आयुधादि स्थान (वायव्य की ओर) (W)
✻ पश्चिम में भोजनार्थ बैठने का स्थान। (D)
✻ अग्निकोण में पाकसाधन - रसोईघर, अग्निचूल्हा। (K)
✻ नैऋत्य में शौचालय नीर के साथ। (L)
✻ वायुकोण-वायव्य-में हो सर्वायुधस्थान। (W)
✻ ईशान कोण में धर्मस्थान, जलस्थान भी धरती के नीचे। (G)
✻ घर के मध्य में खाली स्थान हो।

✻ दक्षिण-द्वार : यदि दक्षिण में द्वार करना ही पड़े निरुपाय से, तो वह द्वार के आठ भागों में से 5वें अथवा 3रे (तीसरे) भाग में ही रखा जाय। दक्षिण-अग्नि और दक्षिण-पश्चिम दिशा कोण की ओर (SE) कभी द्वार न रखें। वैसे दक्षिण द्वार (SW) यमद्वार है।

✻ ✻ ✻

सुखं धनानि बुद्धिश्च संतति सर्वदानृणाम्।

तस्य लोकस्य कृपाया सात्रमेत - धुरिर्यधी॥

(समरांगणसूत्रधार)

"To attain health, wealth, children and many other advantages Vaastu Shastra helps to a great extent. Affliction of incorrect Vaastu creates sorrows and disappointments. So houses, villages, towns and cities shall be built according to Vaastu. Hence, Vaastu Shastra was brought into light by Sages for the betterment and overall welfare of Society."

EXTRACTS OF JAIN VAASTU

VAASTU AT A GLANCE : WHAT GOES WHERE?
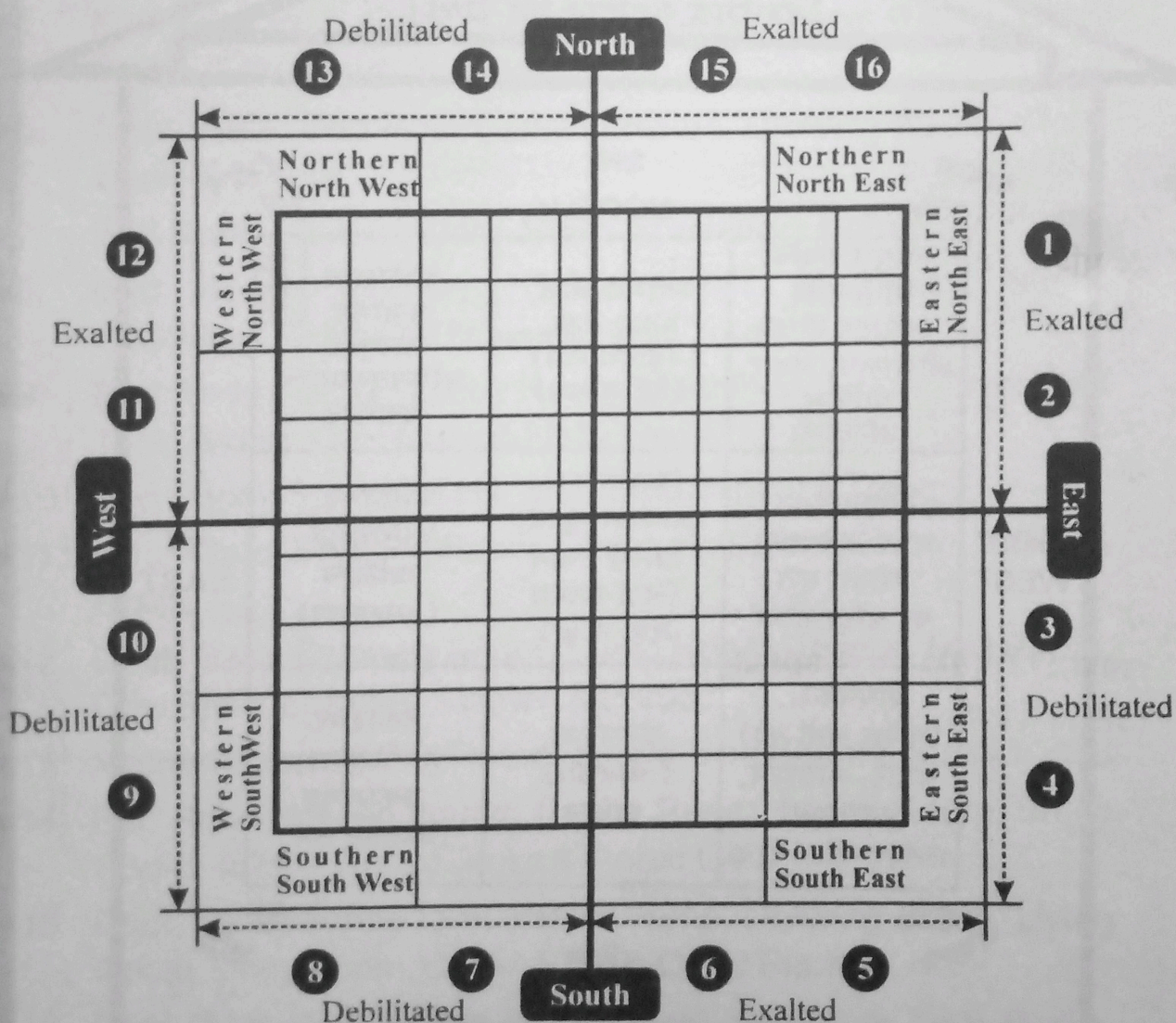
(Explanations of this Vaastu Chart on the next page)

आपका गृहवास्तु
VAASTU FOR YOUR HOME

सर्वोच्च गृहशिखरः छत
पिरामिड आकार का श्रेष्ठ।

वायव्य NW | उत्तर NORTH | ईशान NE

आयुध स्थान, पानी टंकी, (=वाटर टन्क) शौचालय, भंडार, पार्किंग, हरियाली	स्वागत-कक्ष, बैठक-कक्ष, (=ड्राइंग रुम), (स्ट्रोंग रुम)	धर्मस्थान, पूजागृह, जलकुंभ, भूमिगतस्थान= बेसमेन्ट (ढलान)
भोजनस्थान, बाल-अध्ययन, सीढ़ी, छत पर वॉटर टॅन्क	(ब्रह्मस्थान), आकाश खुला, खाली स्थान (यहाँ स्तम्भ गड़ा न हों)	स्नानगृह, अतिथिगृह, अलिन्द (=बरामदा)
शयनकक्ष, (वरिष्ठ जनों का) भंडार, गोडाउन, स्टोररुम, छतपर वॉटर टॅन्क	शंयनकक्ष, (=बेडरुम), लॉकर	रसोईघर (=किचन), प्रकाशगृह (=लाइट रुम)

पश्चिम WEST | पूर्व EAST

SW नैऋत्य | SOUTH दक्षिण | SE अग्नि

यह दक्षिण भाग कुल ऊंचा हो।
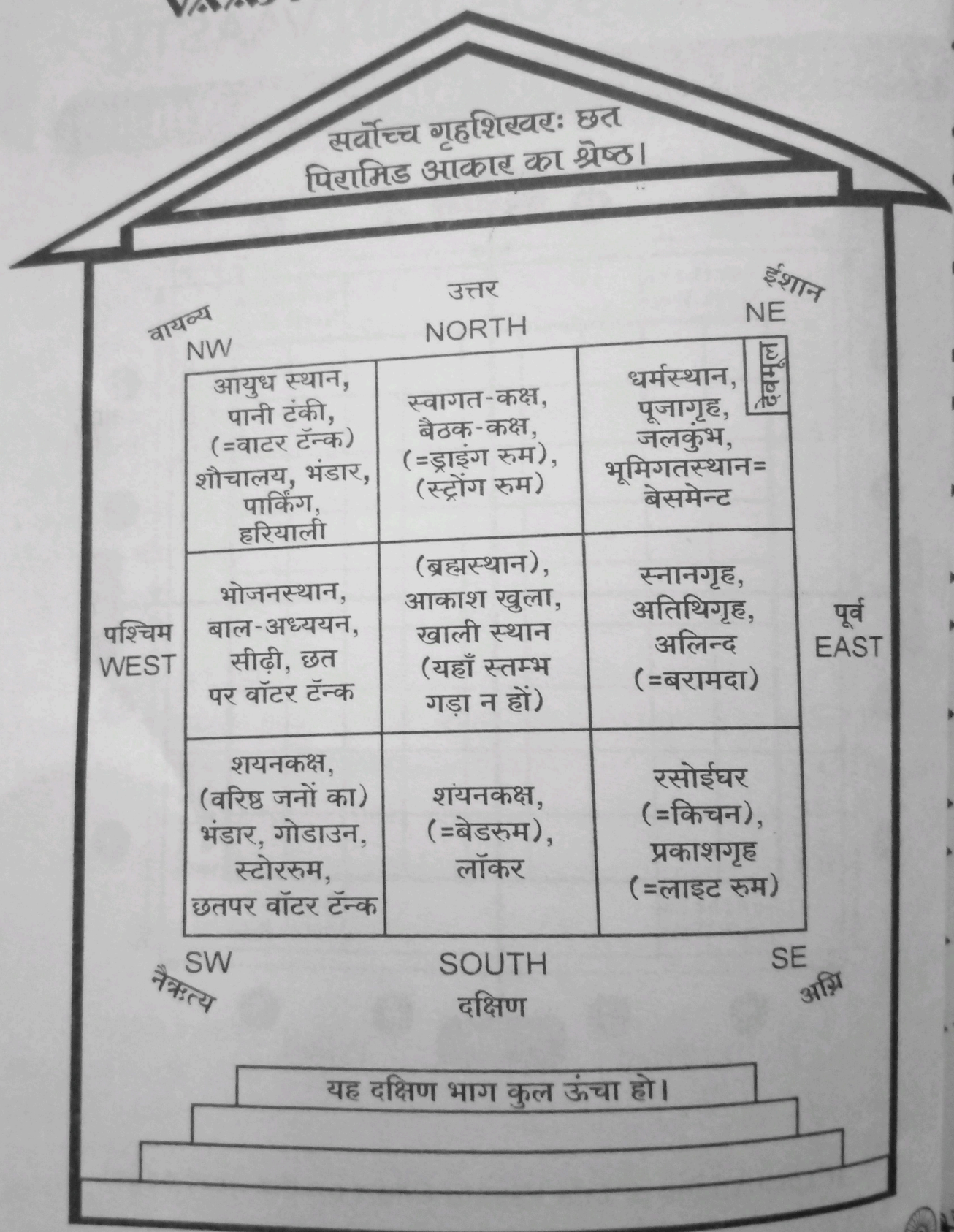
Explanations of VAASTU CHART

(Serial numbers refer to the numbers on the Chart)

- 1. Well, Boring, Water Sump, Deity Room, Gate, Door, Cellar, Verandah, Livingroom, Drawing & Portico.
- 2. Well, Boring, Water Sump, Deity Room, Septic Tank, Gober Gas, Cellar, Basil & Flower Plants.
- 3. Septic Tank, Gober Gas, Dinning Hall, Portico, Store, Deity, Basil & Small Plants.
- 4. Kitchen, Boiler, Stairs, Latrine, Bath Room & Trees.
- 5. Kitchen, Door, Gate, Drawing Room, Living Room, Office Room, Toilet, Portico & Trees
- 6. Door, Gate, Bed Room, Dining Room, Drawing Room, Store, Stairs & Toilets.
- 7. Bed Room, Toilets, Store, Stairs, Machinery & Granary.
- 8. Bed Room, Godown, Office Room, Machinery, Stairs, Overhead Tank, Out House & Hefty Trees.
- 9. Bed Room, Store, Office Room, Machinery, Stairs, Overhead Tank, Stairs, Out House & Hefty Trees.
- 10. Bed Room, Store, Toilets, Stairs, Machinery & Trees.
- 11. Door, Gate, Drawing Room, Dining Hall, Living Room, Toilets & Stairs.
- 12. Door, Gate, Drawing Room, Living Room, Toilets , Bed Room, Cow Shed, Granary, Kitchen & Portico.
- 13. Kitchen Room, Living Room, Toilets, Bed Room & Stairs.
- 14. Bed Room for the young, Dining Room, Living Room, Study Room, Toilets, Septic Tanks & Gober Gas.
- 15. Door, Gate, Septic Tank, Water Sump, Drawing Room, Living Room, Deity Room, Cellar, Basil & Other Plants.
- 16. Door, Gate, Well, Boring, Water Sump, Verandah, Deity Room, Drawing Room, Portico & Cellar.

वर्तमान वास्तुविद् श्री गौरु तिरुपति रेड्डी लिखित चुनी हुई चंद वास्तु सूक्तियाँ

(इन का विशिष्ट स्पष्टीकरण प्रत्यक्ष में प्राप्तव्य)

* स्थल-शुद्धि तो पहले कर लो, मनमाना घर बाद बना लो।
* चार दिवारी प्रथम बनाओ, रक्षक होगी, उसे अपना लो।
* करो शुरु ईशान खुदाई, वही वेगवत् घर को बनवाई।
* नैऋत्य में प्रथम नींव बनाओ, नवनिधियों की आरती उतारो।
* पूरब में जो होवे द्वार, शुभ-शुभ बजे जीवन तार।
* पूर्व-आग्नेय का जो हो द्वार, चोराग्नि, स्त्री-पीड़ा की मार।
* दक्षिण-आग्नेय में जो हो द्वार, नारी जन को करे उपकार।
* दक्षिण-नैऋत्य में जो हो द्वार, नारी सुख पर करे प्रहार।
* उत्तर में जो हो द्वार, प्रगतिपूर्ण रत्नों का हार।
* उत्तर-ईशान को हो जो द्वार, धनदायक, स्त्री सौभाग्य विहार।
* पश्चिम में हो जो एक द्वार, गृह सुख-क्षेम भरे फुल्वार।

("वास्तु-सूक्तियाँ" से साभार उद्धृत)

भूमिपरीक्षा के प्रतिमानों का सार संक्षेप

1. जलप्रवाह पूर्व, उत्तर अथवा ईशान की ओर जाय वह भूमि उत्तम। अर्थात् उसे उत्तम भूमि समझें जो पूर्व दिशा, उत्तर दिशा, ईशान कोण में नीची हो और पश्चिमदिशा, दक्षिणदिशा आदि में ऊंची हो।
2. 24 इंच का गड्ढ़ा खोदकर, उसमें पुनः भरने पर मिट्टी अधिक शेष बच जाय वह भूमि उत्तम। उसमें बीज बोने पर शीघ्र अंकुर फूट जाय वह भूमि उत्तम।
3. **समचोरस :-** जो भूमि ''समचोरस'' हो, सम बाहुस्थल वाली हो वह उत्तम। ''विषम वास्तुस्थल'' (अर्थात् जिस भूमिखंड Plot / Site की चार भुजाएं या कोने नाप में कम-ज्यादा हों, एक समान नाप के न हों ऐसी भूमि अच्छी नहीं होती, वह दरिद्रता देती है। संक्षेप में चारों कोनों में 90° (Ninety Degree) कोण हो। इसके सिवा त्रिकोण, विषमबाहु, दंडाकार, वृत्ताकार, चक्राकार, अंडाकार, शकटाकार डमरुकाकार, कुंभाकार, मूसलाकार, स्तूपाकार, अर्धचन्द्राकार, मृदंगाकार, पंखाकार, इत्यादि भूमिखंड अच्छे नहीं हैं।
4. अखंड, बिना फटी हुई, बिना क्षत-विक्षत हुई ''अक्षतभूमि'' अमरताप्रदाता होती है।
5. जंतुरहित, बिना जंतुओं की भूमि व्याधि-शामक होती है।
6. शल्यरहित, बिना कंटकों की भूमि सुखदायक होती है।
7. पूर्वोत्तर में नीची भूमि (ऊपर नं. 1 में कथित) सुखप्रदायक होती है, सर्वोत्तम होती है।
8. भूमि के ऊंचे-नीचे स्तरों (Levels) के विशेष वर्गीकृत परिणाम:-

   * नैऋत्य कोण (South West)
   * पश्चिम दिशा (West)
   * दक्षिण दिशा (South)
   * अग्नि कोण (South East)
   * वायव्य कोण (North West)
   * मध्यभाग (Centre)

इतने हिस्सों में जितनी नीची हो, अर्थात् पानी का प्रवाह इन सभी की ओर ले जानेवाली हो तो वह अशुभ व्याधिदाता, रोगप्रदाता, दारिद्रय-दाता, कानून-फिसाद दाता, वध एवं मृत्युकारक भी होती है।

इन्हें अधिक स्पष्ट रुप से समझें तो -

- ❊ नैऋत्य कोण (South West) में नीची भूमि - रोगकारक, क्लेशकारक।
- ❊ पश्चिम दिशा (West) में नीची भूमि - धनधान्य विनाश कारक।
- ❊ दक्षिण दिशा (South) में नीची भूमि - कानून-फिसाद दायक।
- ❊ अग्नि कोण (South East) में नीची भूमि - मृत्युकारक।
- ❊ वायव्य कोण (North West) में नीची भूमि - क्लेश, प्रवास रोग कारक।
- ❊ मध्यभाग (Centre) में नीची भूमि - सर्वप्रकार से विनाशकारक।

ये सारे निम्न स्तर और उनके आनेवाले परिणाम जानकर बड़ी सावधानी से भूमिपरीक्षा और भूमिखरीद करें। संक्षेप में दक्षिण एवं पश्चिम दिशाओं के स्तर ऊंचे हों ऊंचाई वाले हों।

9. प्रशस्त भूमि : जो उत्तम भूमि दर्शनमात्र से मन और नेत्र को प्रसन्नकर्ता, आह्लादपूर्ण, उत्साह-वर्धक दिखाई दे उस भूमि को भवन-निर्माण के योग्य समझें। ऐसी भूमि ही खरीदें। प्राथमिक स्वरुप, प्रकार और स्तर की ये सारी साररुप बातें महत्त्वपूर्ण होकर स्वीकार करें।

अच्छा तो यह होगा कि सर्वोच्च प्राथमिक महत्त्वपूर्ण आवश्कयता ऐसी भूमिखरीद-भूमिचयन-भूमिपरीक्षा के पूर्व किसी तज्ञ, अनुभवी वास्तुशास्त्री को साथ ले जाकर उपर्युक्त सभी प्रतिमानों और पहलुओं से यह सारा कार्य करें। अप्रशस्त, अनुचित, अयोग्य भूमि-स्थल को पसंद करने से बचें - पैसों से सस्ती मिलती हो तो भी। फिर अपने थान से निकट ही कोई भूमि-स्थल मिल जाता हो तो अपने स्थान से दक्षिण या पश्चिम में पड़नेवाली भूमि कभी न खरीदें। अपने से उत्तर या पूर्व वाली भूमि खरीद सकते हैं।

दूसरी बात - खरीदी जा रही भूमि (कि जहाँ अपना खास निवास या कार्यस्थान बनाना है) आजुबाजु के किस वातावरण, पड़ौस, अन्य भवनों या मंदिरों के निकट या बीच में पड़ती है यह खास विवेकपूर्वक सूक्ष्म दृष्टि से और सभी पहलुओं को सोच कर समग्रता में, (in totality) निर्णय करें। इस विषय पर अन्यत्र सूचित किया गया है।

फिर इस नूतन खरीदीवाली भूमि अगर प्राकृतिक रुप से ही अपने से पूर्व तथा उत्तर दिशा में तालाब, झरना, सरोवर, नदी, गड्ढ़े आदि से युक्त हो और दक्षिण तथा पश्चिम दिशा में (अर्थात् अपने पीछे और दक्षिण बाजु पर) टीले, टेकड़े, पर्वत पहाड़ियाँ आदि से भरी पड़ी हो तो सहज नैसर्गिक रुप से ही वह अत्यंत अनुकूल और वरदान समान सिद्ध होगी।

जमीन स्पष्ट रुप से पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारों दिशाएँ, निकट के स्थल / स्थलों की समांतर होनी चाहिये, उस स्थल के कोनों में पड़नेवाली नहीं, अर्थात् पूर्व-उत्तर आदि कोनों में (ळप रपसश्रशी) पड़ते न हों। इसमें भी ईशान कोण को घटानेवाली या काटनेवाली जमीन न लें परंतु ईशान को बढ़ानेवाली, बाहर निकालनेवाली जमीन लें। ईशान के सिवा अन्य किसी भी कोने में बढ़ जानेवाली जमीन अच्छी नहीं होने से बिलकुल खरीदें नहीं। जिस जमीन के चारों ओर रास्ते, सड़कें हों ऐसी भूमि ''विदिशा'' स्थल अथवा ''ब्रह्मस्तवम्'' स्थल कहलाती है और सर्वप्रकार के सुख, स्वास्थ्य, शांति, संवादिता एवं संपत्ति प्रदान करती है। ऐसी सर्वोत्तम भूमि सहज में नहीं मिलती। बेंगलोर का ''विधानसौधा'' भवन प्रायः इसका उदाहरण है।

सामान्य सामाजिक मानदंडों से भी सुरक्षा, शांति, स्वास्थ्य, संवादिता आदि के लिये पास-पड़ौस अच्छे, सुशील, सच्चरित्र, निर्व्यसनी लोगों का उचित माना गया है। सत्संग स्थान, धर्माराधना स्थान, जिनालय आदि निकट होने चाहिये ताकि सत्साधन सहज ही मिलते रहें सारे परिवार को। जैसा कि अन्यत्र इस ग्रंथ में कहा गया है जिनमंदिर के समीपस्थ-सामनेवाले और दाहिनी ओर (जिनप्रतिमा की Right Hand Side) के भूमि स्थान को अच्छा, शुभप्रदाता माना गया है। जिनप्रासाद का अस्तित्व ही ऐसे शुभ, प्रशांत आंदोलन (Vibration) प्रवाहित करता रहता है। प्रार्थना करें कि हमें ऐसी, जिनचरणों के निकट रखनेवाली भूमि प्राप्त हो।

॥ ॐ शान्तिः ॥

Essence of Jain Vaastu

जैन वास्तुसार

ॐ

श्री वीतरागाय नमः।

परम जैन चन्द्राङ्गज - ठक्कुर फेरु विरचित

सिरि - वत्थुसार - पयरणं।

श्री वास्तुसार प्रकरण

मंगलाचरण

सयलसुरासुरविंदं दंसणवण्णाणुगं पणमिऊणं।
गेहाइवत्थुसारं संखेवेणं भणिस्सामि॥ 1 ॥

सम्यक् दर्शन और सम्यक् ज्ञानवाले देव और दानव आदि के समूह को प्रणा करके घर आदि बनाने की विधि को जानने के लिये संक्षेप में वास्तुसार नाम शिल्पग्रन्थ की मैं (ठक्कुर फेरु) रचना करता हूँ॥ 1 ॥

द्वारगाथा

इस ग्रंथ में तीन प्रकरण हैं जिसमें गृहवास्तु नामक प्रथम प्रकरण में एक सं इक्यावन, बिम्बपरीक्षा नामक दूसरे प्रकरण में तिरपन और तीसरे प्रासाद प्रकरण सत्तर गाथाएँ हैं। तीनों प्रकरणों की कुल मिलाकर दो सौ चौहत्तर गाथाएँ हैं॥ 2 ॥

भूमिपरीक्षा

जिस भूमि में घर तथा मंदिर आदि बनाना हो उस भूमि में चौबीस अंगुल के ना का गड्ढा खोदना चाहिए। उसमें से जो मिट्टी निकले उसी मिट्टी से वह गड्ढा भर दे चाहिए। अगर मिट्टी कम पड़े अर्थात् अगर गड्ढ़ा पूरा भर न जाये तो हीनफल, मि अधिक हो तो उत्तम फल और अगर गड्ढ़ा ठीक से भर जाये, मिट्टी बच न जाये समान फल समझना चाहिए॥3॥

अथवा उस चौबीस अंगुल के गड्ढे में पूरा पानी भरें। फिर एक सौ कदम दूर कर वापस आ कर उस पानी से भरे हुए गड्ढ़े को देखें। अगर गड्ढ़े का पानी ती अंगुल सूख जाय तो अधम, दो अंगुल बराबर पानी सूख जाय तो उत्तम भूमि समझ ॥ 4 ॥

वर्णानुकूल भूमि

श्वेतवर्ण की भूमि ब्राह्मण के लिये, लाल वर्ण की भूमि क्षत्रिय के लिये, पीले वर्ण की भूमि वैश्य के लिये और काले वर्ण की भूमि शूद्र के लिये है। मिट्टी के इन वर्णों के अनुसार स्वयं के अनुरुप वर्ण की भूमि सुखकारक समझनी चाहिए॥ 5 ॥

दिशा साधन

समतल भूमि पर दो हाथ के विस्तार वाला एक गोल-वृत्त बनायें। उस वर्तुल के मध्य भाग में बारह अंगुल का शंकु स्थापित करके सूर्योदय के समय देखें। जहाँ शंकु की छाया का अंत्य भाग वर्तुल की परिध में आये वहाँ एक चिह्न करें। इसे पश्चिम दिशा समझें। फिर सूर्यास्त के समय देखें।

जहाँ शंकु की छाया का अंत्य भाग परिधि में आये वहाँ दूसरा चिह्न करें। इसे पूर्व दिशा समझें। अब पूर्व और पश्चिम चिह्नों के बीच एक सीधी रेखा खींचें। इस रेखा को व्यासार्ध मानकर एक पूर्व चिह्न से और दूसरा पश्चिम चिह्न से इस प्रकार दो गोल बनाने से पूर्व पश्चिम रेखा पर एक मछली के आकार का गोल बनेगा। इसके मध्यबिंदु से गोल के स्पर्शबिंदु तक एक सरल रेखा खींचें, जहाँ यह ऊपर के बिंदु को स्पर्श करे उसे उत्तर दिशा और जहाँ नीचे के बिंदु को स्पर्श करे उसे दक्षिण दिशा समझें।

उदाहरण

इ उ ए गोल का मध्य बिंदु ''अ'' है उसके ऊपर बारह अंगुल का शंकु स्थापित करके सूर्योदय के समय देखा तो शंकु की छाया गोल में ''क'' बिंदु के पास प्रवेश करती हुई दिखाई दी। अतः ''क'' बिंदु को पश्चिम दिशा समझना चाहिए। मध्याह्न के बाद सूर्यास्त के समय इस शंकु की छाया 'च' बिंदु के पास गोल के बाहर निकलती हुई दिखाई दी अतः ''च'' बिंदु को पूर्व दिशा समझना चाहिए। फिर ''क'' बिंदु से ''च'' बिंदु तक एक सीधी रेखा खींची जाय तो वह पूर्व-पश्चिम रेखा होगी। इस पूर्व-पश्चिम रेखा को व्यासार्ध मानकर ''क'' बिंदु से एक ''च छ ज'' और ''च'' बिंदु से दूसरा ''क ख ग'' गोल बनायें तो पूर्व पश्चिम रेखा के ऊपर मछली के आकार का एक गोल बनेगा। अब मध्य के ''अ'' बिंदु से एक लंबी सरल रेखा खींचें, जो मछली के आकारवाले गोल के मध्य में से निकलकर दोनों वर्तुलों के स्पर्श बिंदु को स्पर्श करती हुई बाहर निकले उसे उत्तर-दक्षिण रेखा समझना चाहिए।

✲ दिशा साधन यंत्र ✲
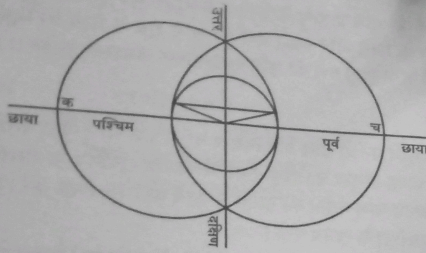
अथवा शंकु की छाया तीरछी ''इ'' बिंदु के पास वर्तुल में प्रवेश करती हुई दिखाई दे तो ''इ'' को पश्चिम बिंदु और ''उ'' बिंदु के पास बाहर निकलती हुई दिखाई दे ''उ'' को पूर्व बिंदु समझें। अब 'इ'' बिंदु से ''उ'' बिंदु तक सरल रेखा खींचें तो पूर्वपश्चिम रेखा होगी। अब मध्य बिंदु ''अ'' से पूर्ववत् उत्तर-दक्षिण रेखा खींचें।

समचोरस स्थापना

समतल भूमि पर एक हाथ के विस्तारवाला वर्तुल बनायें, उस वर्तुल में [illegible] अष्टकोण और उस अष्टकोण के कोणों की दोनों ओर 17 अंगुल की भुजावाला एक समचोरस बनायें।

गणितशास्त्र के हिसाब से एक हाथ के विस्तारवाले वर्तुल में आठ कोण बनाये जाय तो प्रत्येक भुजा का नाप नौ अंगुल और समचोरस बनाया जाय तो प्रत्येक भुजा का नाप सत्रह अंगुल होता है।

✲ समचोरस भूमि साधन यंत्र ✲

अष्टमांश स्थापना

समचोरस भूमि की प्रत्येक दिशा में बारह-बारह भाग बनायें, उसमें पांच भाग मध्य में और साड़े तीन-साड़े तीन भाग दोनों ओर कोने में रखें जिससे ठीक अष्टमांश होगा।

इस प्रकार के अष्टमांश अधिकतर मंदिर एवं राजमहलों के मंडपों में बनाये जाते हैं।
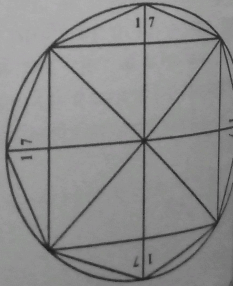
✲ अष्टमांश भूमि साधन यंत्र ✲
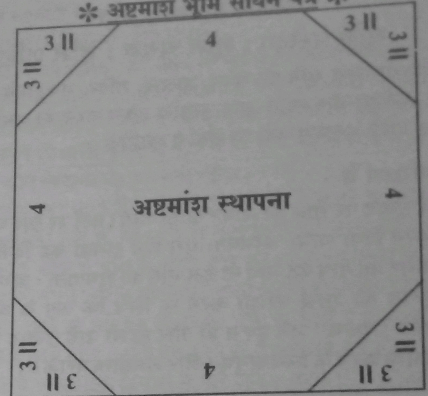
भूमिलक्षण फल

जिस भूमि में बीज बोने से तीन दिन में उग जायँ ऐसी, समचोरस, दीमक-रहित, फटी हुई न हों ऐसी, शल्य रहित तथा जिसमें पानी का प्रवाह पूर्व, ईशान या उत्तर की ओर जाता हो अर्थात् पूर्व, ईशान या उत्तर की ओर नीची ऐसी भूमि सुख देने वाली होती है, दीमकयुक्त भूमि व्याधिकारक है, लवणयुक्त भूमि उपद्रवकारक, अधिक फटी हुई भूमि मृत्युकारक तथा शल्ययुक्त भूमि दुःख देनेवाली होती है।

''समरांगण सूत्रधार'' में कहा गया है कि घर की भूमि में अगर नैऋत्यकोण, पश्चिम दिशा, दक्षिण दिशा, वायव्य कोण और मध्यभाग की ओर पानी का प्रवाह जाता हो, अर्थात् यह भाग नीचा हो तो वह भूमि व्याधि, दारिद्रय, रोग और वध करनेवाली है। घर बनाने की भूमि अग्नि कोण की ओर नीची हो तो मृत्युकारक है। नैऋत्य कोण की ओर नीची हो तो रोगकारक है। पश्चिम दिशा की ओर नीची हो तो धनधान्य का विनाश करनेवाली है। वायव्यकोण की ओर नीची हो तो क्लेश, प्रवास और रोगकारक है। मध्य भाग में नीची हो तो सर्व प्रकार से विनाशकारक है।

''समरांगण सूत्रधार'' में प्रशस्त भूमि का लक्षण इस प्रकार कहा गया है - जो भूमि गरमी की ऋतु में ठंडी, ठंडी की ऋतु में गरम और वर्षा की ऋतु में गरम और ठंडी - इस प्रकार समयानुकूल हो वह प्रशंसनीय है।

वास्तुशास्त्र में कहा है कि जिस भूमि को देखने से मन और नेत्र प्रसन्न हो अर्थात् जिस भूमिको देखने से मन के उत्साह में वृद्धि हो उस भूमि पर भवन बनाना चाहिए ऐसा गर्ग आदि आचार्यों का मत है।

सर्वोच्च प्राथमिक महत्त्व

भूमि परीक्षा : भूमि चयन : भूमि शुद्धि

सर्वप्रथम तो जिस भूमि पर भवन, प्रासाद, मंदिर, मकानादि निर्मित करना है उसकी शुद्धि, परीक्षा और शांति-सुख-समृद्धि प्रदान करने की क्षमता देखी जाती है इस हेतु निम्न उपाय अनुभवी जनों एवं ग्रंथों ने दर्शाये हैं :-

इस लघु - परीक्षण में -

1. प्रस्तावित भूखंड पर गाय को लाकर छोड़ा जाय। वहाँ पर यदि घास ऊगा हुआ है तो उसे चरने दिया जाय - संभवतः पूरा दिन अथवा कई दिनों तक। उस जग आखिर अगर वह गाय बैठ जाय तो उस भूमि को शुभदाता - अच्छी समझी जाय।
2. प्रस्तुत भूखंड की शुद्धि-परीक्षा करने के लिये कि उस के अंदर अस्थिपिंजर हड्डियाँ आदि "शल्य" गड़े हुए न हों और हों तो उन्हें उखाड़ निकालने के लि जानकारी प्राप्त करने के लिये अनुभूत और शास्त्रोक्त तरीके हैं।

शल्यशोधन

एक प्रमुख तरीका है - इस सरस्वती यंत्र में किसी भूमि पर भवन / मंदिर बनवा की भावना हो तो भूमि-शल्य-परीक्षा बतलाई गई है।

✲ सरस्वती यंत्र ✲

ईशान — पूर्व — अग्नि

प	ब	क
स	ज	च
ह	ए	त

उत्तर — दक्षिण

वायव्य — पश्चिम — नैऋत्य

ईशान प	पूर्व ब	अग्नि क
उत्तर स	ज	दक्षिण च
वायव्य ह	पश्चिम ए	नैऋत्य त

विधि : प्रस्तावित भूमि के कोष्ठक में दर्शाये अनुसार नव भाग करें। फिर उन नव भाग में पूर्वादि आठ दिशाओं के क्रम से और एक मध्य में ऐसे "ब क च त ए ह स ष और (य)" - नव अक्षर क्रम से लिखें। अब

"ॐ ह्रीं श्रीं ऐं नमो वाग्वादिनि ! मम प्रश्ने अवतर अवतर।"

इस मंत्र के द्वारा कलम को (अथवा लिखने की 'खड़ी' - चौक को) अभिमंत्रि करके कन्या के हाथ में देकर उसके (द्वारा) पास कोई अक्षर लिखवायें या बुलवायें अगर ऊपर लिखित नव अक्षरों में से कोई एक अक्षर वह लिखे या बोले तो उ

अक्षरवाले भाग में शल्य है ऐसा समझें। अगर उपर्युक्त नव अक्षरों में से कोई भी अक्षर प्रश्न में न आये तो भूमि को शल्य-रहित समझें।

परंतु अगर प्रश्न का अक्षर "ब" आये तो पूर्व दिशा की भूमि के भाग में डेढ़ हाथ की गहराई में मनुष्य का शल्य (हड्डियाँ आदि) है ऐसा समझना चाहिये। अगर यह शल्य (निकाला न जाय और) जमीन में रह जाय तो गृहस्वामी की मृत्यु होगी। प्रश्न का अक्षर "क" आये तो अग्नि कोण में भूमि में दो हाथ की गहराई में गधे का शल्य रहेगा, जिसके रह जाने से राजा का भय बना रहेगा।

प्रश्नाक्षर अगर "च" आये तो भूमि के दक्षिण भाग में कमर के बराबर गहराई में मनुष्य का शल्य समझें। इस के रह जाने से गृहस्वामी की मृत्यु होती है। प्रश्नाक्षर "त" आने पर नैऋत्य कोण में भूमि के अंदर कुत्ते का शल्य समझना चाहिये। इस के रह जाने से संतान हानि होगी अर्थात् गृहस्वामी संतानसुरव से वंचित रहेगा।

प्रश्नाक्षर "ए" आने पर पश्चिम दिशा की भूमि के भाग में दो हाथ नीचे बालक का शल्य समझना चाहिये और उसके रह जाने से गृहस्वामी को विदेश में रहना पड़े अर्थात् वह उस घर में सुखपूर्वक निवास न कर सके। प्रश्न में "ह" अक्षर आये तो वायव्य कोण की भूमि में चार हाथ नीचे अंगारे हैं ऐसा समझें, जिस के रह जाने से मित्रों-संबंधीजनों का विनाश हो सकता है।

प्रश्न का अक्षर "स" आये तो उत्तर दिशा में भूमि के अंदर कमर के बराबर नीचे ब्राह्मण का शल्य समझें। इस के रह जाने से गृहस्वामी दरिद्र रहता है। प्रश्नाक्षर "प" आये तो ईशान कोण में डेढ़ हाथ नीचे गाय का शल्य समझना चाहिये। इसके रह जाने से धन का नाश होता है।

प्रश्नाक्षर "ज" आने पर भूमि के मध्य भाग में छाती के बराबर नीचे अधिक क्षार, कपाल (भाल), केश आदि अनेक प्रकार का शल्य समझना चाहिये। इसके रह जाने से गृहस्वामी की मृत्यु होगी।

ऊपर जो कहा गया है उसके अनुसार अथवा और किसी प्रकार का शल्य दिखाई पड़े तो उन सब को दूर कर के भूमि को शुद्ध करें। तत्पश्चात् वत्स का शुभ बल देखकर मकान आदि बनाना चाहिये।

"विश्वकर्माप्रकाश" अनुसार पानी अथवा पत्थर निकलने तक अथवा एक पुरुष-प्रमाण खोदकर शल्य को निकाल देना चाहिये और भूमि को शुद्ध करना चाहिये। इस भूमिशुद्धि के पश्चात् उस भूमि पर मकान आदि बनाने का आरंभ करना चाहिये।

3. भवन, मंदिर आदि बनवाने की भूमि में 24 चौबीस अंगुलि प्रमाण नाप का गड्ढा खोदें। उसमें से निकलनेवाली मिट्टी से पुनः उस गड्ढे को भर दें। अगर ऐसा करने

पर मिट्टी कम हो जाय अर्थात् गड्ढ़ा भरे नहीं तो हीनफल, मिट्टी बढ़ जायँ - शे
रहकर बव जायँ तो उत्तमफल एवं गड्ढ़ा ठीक से फुरा जायँ, मिट्टी बचे नहीं
समानफल समझें।

4. अथवा तो उपर्युक्त चौबीस अंगुल प्रमाण वाले गड्ढ़े में ठीक से पूर्ण पानी भरना फि
एक सौ कदम चलकर दूर जा आकर पानी से भरे हुए गड्ढ़े को देखें। अगर गड्ढ़े
तीन अंगुल भर पानी सूख जाय तो अधम, दो अंगुल पानी सूख जाय तो मध्य
और एक अंगुलभर पानी सूख जाय तो उत्तम भूमि समझें।

तो प्रथम इन सर्व उपायों, परीक्षाओं से भूमि चयन और भूमिशुद्धिकरण क
ऐसी पहचान करने के पश्चात् उसे भवननिर्माण एवं निवास के लिये पसंद करें, स
समझें।

वत्स चक्र

जब सूर्य कन्या, तुला और वृश्चिक राशि का हो तब वत्स का मुख पूर्व दिशा
धन, मकर और कुंभ राशि का हो तब वत्स का मुख दक्षिण दिशा में; मीन, मेष औ
वृषभ राशि का हो तब वत्स का मुख पश्चिम दिशा में; मिथुन, कर्क और सिंह राशि
हो तब वत्स का मुख उत्तर दिशा में होता है। वत्स का मुख जिस दिशा में हो, उस दि
में खात प्रतिष्ठा, द्वार प्रवेश आदि कार्य करने की शास्त्र में मना है, किन्तु वत्स ए
दिशा में तीन-तीन मास रहता है तो तीन मास तक उक्त कार्य को रोकना ठीक नहीं
इसके लिये विशेष स्पष्टता की गई है।

घर की भूमि के प्रत्येक दिशा में सात सात भाग करें। इसमें अनुक्रम से प्रथम भा
में पांच दिन, दूसरे में दस, तीसरे में पंद्रह, चौथे में तीस, पाँचवें में पंद्रह, छठे में दश और सातवें में पाँच दिन वत्स रहता है। इसी प्रकार चारों दिशाओं में दिन संख्या समझनी चाहिए। जिस अंक पर वत्स का मस्तक हो उसी अंक के ठीक सामने के अंक पर वत्स की पूंछ रहती है। इस प्रकार वत्स की स्थिति होती है।

✻ वत्स चक्र ✻

कन्या राशि का सूर्य हो तब पूर्व दिशा में खात आदि का करना अनिवार्य हो तो कन्या राशि के प्रथम पाँच दिन प्रथम भाग में खात आदि न करना
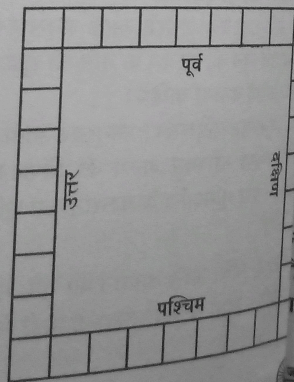
चाहिए परंतु दूसरे छः भागों में कभी अच्छा मुहूर्त देख कर किया जा सकता है। छः से पन्द्रह दिन दूसरे भाग में, सोलह से तीस दिन तीसरे भाग में खात आदि कार्य न करना चाहिए। तुला राशि के तीस दिन चौथे भाग में, वृश्चिक राशि के सूर्य में प्रथम पन्द्रह दिन पाँचवे भाग में, सोलह से पचीस दिन छठे भाग में और छब्बीस से तीस दिन सातवें भाग में खात आदि कार्य न करना चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक दिशा में प्रत्येक भाग की दिन संख्या छोड़ देनी चाहिए।

वत्सफल

वत्स सम्मुख हो तो आयुष्य का नाशकारक और पीछे हो तो धन का नाशकारक होता है। दाहिनी या बांयी ओर अगर वत्स हो तो सुखकारक समझना चाहिए। प्रथम खात के समय शेषनागचक्र (राहु चक्र) देखा जाता है। विश्वकर्मा ने बताया है कि -

प्रथम ईशान कोण से राहु चलता है। *सृष्टिमार्ग को छोड़कर विपरित विदिशा में शेषनाग का मुख, नाभि तथा पूंछ रहते हैं अर्थात् ईशान कोण में मुख वायव्य कोण में नाभि (पेट) तथा नैऋत्य कोण में पूंछ रहते हैं। अतः इन तीनों कोणों को छोड़कर चौथा अग्नि कोण, जो कि खाली रहता हैं, उसमें प्रथम खात करना चाहिये। मुख, पेट या पूँछ पर खात किया जाये तो हानिकारक होता हैं।

---

*"राजवल्लभ" में अलग ढंग से बताया गया है -

सूर्य, कन्या, तुला और वृश्चिक इन तीन राशियों में हो तब शेषनाग का मुख पूर्व दिशा में रहता है। फिर सृष्टिक्रम से सूर्य, धन, मकर और कुंभ इन तीन राशियों में हो तब दक्षिण में; मीन, मेष और वृषभ इन तीन राशियों में हो तब पश्चिम में और मिथुन, कर्क तथा सिंह इन तीन राशियों में हो तब मुख उत्तर में रहता है।

शेषनाग का मुख पूर्व दिशा में हो तब वायव्य कोण में खात मुहूर्त करना चाहिए। दक्षिण में मुख हो तब ईशान कोण में, पश्चिम में मुख हो तब अग्नि कोण में और उत्तर में मुख हो तब नेऋत्य कोण में खात करना चाहिये।

"दैवज्ञवल्लभ" में कहा हैं -

खात मुहूर्त मस्तक पर करने से माता-पिता का विनाश होता है, मध्य भाग (नाभि) पर करने से अनेक प्रकार के भय एवं रोग होते हैं, पूँछ के भाग में करने से स्त्री, सौभाग्य एवं गौत्र की हानि होती है। खाली स्थान पर खात करने से, स्त्री, पुत्ररत्न, धान्य और धन की प्राप्ति होती है।

✲ शेषनागचक्र ✲

ईशान — पूर्व — अग्नि

र	सो	मं	बु	गु	शु	श	र
सो	मं	बु	गु	शु	श	र	सो
मं	बु	गु	शु	श	र	सो	मं
बु	गु	शु	श	र	सो	मं	बु
गु	शु	श	र	सो	मं	बु	गु
शु	श	र	सो	मं	बु	गु	शु
श	र	सो	मं	बु	गु	शु	श
र	सो	मं	बु	गु	शु	श	र

उत्तर — दक्षिण

वायव्य — पश्चिम — नैऋत्य
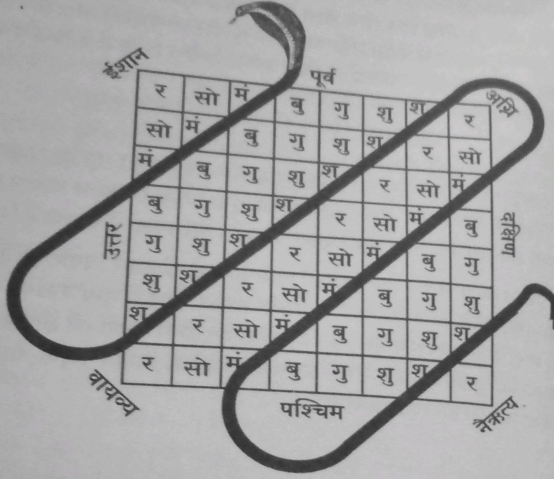
इस शेषनागचक्र को बनाने की विधि इस प्रकार है :

मकान आदि बनाना हो उस भूमि में ठीक समचोरस चौंसठ कोष्ठक बना प्रत्येक कोष्ठक में रविवार आदि सातों वार लिखें और अंतिम कोष्ठक में प्रथम को का वार लिखें। अब इसमें नाग की आकृति इस प्रकार बनायें कि प्रत्येक शनिवार मंगलवार के कोष्ठक में वह स्पर्श करती हुई दिखाई पड़े। जहाँ जहाँ नाग की आ दिखाई पड़े अर्थात् जहाँ-जहाँ शनिवार और मंगलवार का कोष्ठक हो वहाँ वहाँ खा करें।

नागमुख जानने के लिये मुहूर्त चिंतामणि में बताया गया है कि -

देवालय का आरंभ करते समय राहु (नाग) का मुख मीन, मेष और वृषभ का सूर्य हो तब ईशान कोण में; मिथुन, कर्क और सिंह राशि का सूर्य हो, तब वायु में; कन्या, तुला और वृश्चिक का सूर्य हो तब नैऋत्य कोण में तथा धन, मकर और राशि का सूर्य हो तब अग्नि कोण में रहता है।

घर का आरंभ करते समय राहु का मुख सिंह, कन्या और तुला राशि के सू ईशान कोण में, वृश्चिक, धन और मकर राशि के सूर्य में वायव्य कोण में; कुंभ,

ौर मेष राशि के सूर्य में नैऋत्य कोण में तथा वृषभ, मिथुन और कर्क राशि के सूर्य में अग्नि कोण में रहता है।

तालाब आदि जलाशय का आरंभ करते समय राहु का मुख मकर, कुंभ और मीन के सूर्य में ईशान कोण में, मेष, वृषभ और मिथुन के सूर्य में वायव्य कोण में, कर्क, सिंह और कन्या के सूर्य में नैऋत्य कोण में तथा तुला, वृश्चिक और धन के सूर्य में अग्नि कोण में रहता है।

मुख के पीछे के भाग में खात करना चाहिए। मुख ईशान कोण में हो तब अग्नि कोण में खात करना चाहिए; मुख वायव्य कोण में हो तब खात ईशान कोण में, मुख नैऋत्य कोण में हो तब खात वायव्य कोण में और मुख अग्नि कोण में हो तब खात नैऋत्य कोण में करना चाहिए।

हीरकलश मुनि ने कहा है -

विवाह, आदि के समय जो वेदी बनाई जाती है उसके प्रारंभ में वृषभ आदि, वालय के आरंभ में मीन आदि, र के आरंभ में सिंह आदि, लाशय के आरंभ में मकर आदि और किले के आरंभ में कन्या आदि तीन तीन संक्रांतियों में राहु का मुख ईशान आदि कोण में विलोम क्रम से रहता है।

✲ राहु का मुख जानने का यंत्र ✲

स्थान	ईशान कोण	वायव्य कोण	नैऋत्य कोण	अग्नि कोण
देवालय	मीन मेष वृष	मिथुन कर्क सिंह	कन्या तुला वृश्चिक	धन मकर कुंभ
घर	सिंह कन्या तुला	वृश्चिक धन मकर	कुंभ मीन मेष	वृषभ मिथुन कर्क
जलाशय	मकर कुंभ मीन	मेष वृषभ मिथुन	कर्क सिंह कन्या	तुला वृश्चिक धन
वेदी	वृषभ मिथुन कर्क	सिंह कन्या तुला	वृश्चिक धन मकर	कुंभ मीन मेष
गढ	कन्या तुला वृश्चिक	धन मकर कुंभ	मीन मेष वृष	मिथुन कर्क सिंह

घर आदि के आरंभ में वृषवास्तुचक्र" कहता है-

घर और प्रासाद आदि के आरंभ में यह वृषवास्तुचक्र देखा जाता है। सूर्य जिस नक्षत्र पर हो स नक्षत्र से चन्द्रमा के (दिन के) क्षत्र तक गिनें। इसमें प्रथम तीन नक्षत्र वृषभ के मस्तक पर समझें। इन नक्षत्रों में घर आदि का आरंभ किया जाय तो अग्नि का उपद्रव होता है। चार से सात नक्षत्र वृषभ के अगले पैरों पर समझें। इन नक्षत्रों घर का आरंभ किया जाय तो घर शून्य रहता है अर्थात् उसमें मनुष्य का वास नहीं ता। आठ से ग्यारह नक्षत्र पीछे के पैरों पर समझे । इन नक्षत्रों में कार्यारंभ करने से ह स्वामी का वास स्थिर रहता है । 12 से 14 नक्षत्र पीठ पर समझें । इन नक्षत्रों में ह का आरंभ करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। पंद्रह से अठारह नक्षत्र दाहिनी कोख

पर समझें जिसमें आरंभ करने से अनेक प्रकार के शुभलाभ की प्राप्ति होती है। उन्नीस से इक्कीस नक्षत्र पूंछ पर समझें और इसमें आरंभ करने से स्वामी का विनाश होता है बाईस से पच्चीस नक्षत्र बांई कोख पर समझें। इस समय गृह निर्माण का आरंभ करे पर गृहस्वामी दरिद्र रहता है। छब्बीस से अट्ठाईस नक्षत्र मुख पर समझें जिसमे कार्यारंभ करने से निरंतर कष्ट रहते हैं। इस प्रकार से देखें तो सूर्य के नक्षत्र से चन्द्रमा के नक्षत्र तक गिनने से प्रथम सात नक्षत्र अशुभ हैं, आठ से अठारह (8 - 18) नक्षत्र शुभ हैं, उन्नीस से अट्ठाईस नक्षत्र अशुभ हैं।

स्थान	नक्षत्र	फल
मस्तक पर	3	अग्निदाह
अगले पैरों पर	4	शून्यता
पीछले पैरों पर	4	स्थिर वास
पीठ पर	3	लक्ष्मी प्राप्ति
दाहिनी कोख पर	4	लाभ
पूंछ पर	3	स्वामी नाश
बांई कोख	4	निर्धनता
मुख पर	3	पीड़ा

घर के आरंभ में राशि का फल

धन, मीन, मिथुन और कन्या इन चार राशियों के ऊपर जब सूर्य हो तब कभी गृह निर्माण का आरंभ नहीं किया जाना चाहिए। तुला, वृश्चिक, मेष और वृष इन चार राशियों के ऊपर जब सूर्य हो तब पूर्व और पश्चिम दिशा के द्वारवाला घर न बनाएं लेकिन दक्षिण अथवा उत्तर दिशा के द्वारवाले घर का निर्माण शुरु किया जा सकता है। कर्क, सिंह, मकर और कुंभ इन चार राशियों के ऊपर जब सूर्य हो तब दक्षिण अथवा उत्तर दिशा के द्वारवाला घर न बनाना चाहिए, किंतु पूर्व अथवा पश्चिम दिशा के द्वारवाले घर के निर्माण का आरंभ करना चाहिए।

''मुहूर्त चिंतामणि'' की टीका में श्रीपति कहते हैं

जब कर्क, मकर, सिंह और कुंभ राशि का सूर्य हो तब पूर्व अथवा पश्चिम दिशा के द्वारवाले घर का आरंभ किया जाना चाहिए तथा तुला, मेष, वृषभ अैर वृश्चिक राशि का सूर्य हो तब दक्षिण अथवा उत्तर दिशा के द्वारवाले घर का आरंभ किया जाना चाहिए। इससे विपरीत करने से अथवा मीन, धन, मिथुन और कन्या राशि के सूर्य में गृहनिर्माण का आरंभ करने से व्याधि और शोक होते हैं तथा धन का नाश होता है।

नारद मुनि ने बारह राशियों का फल इस प्रकार कहा है

घर की स्थापना (शिलान्यास आदि) अगर मेष राशि के सूर्य में की जाय तो शुभदायक है, वृष राशि के सूर्य में धनवृद्धि होती है, मिथुन के सूर्य में करने से निश्चय मृत्यु होती है। कर्क राशि के सूर्य में कार्यारंभ करने से शुभ फल की प्राप्ति होती है। सिंह के सूर्य में आरंभ करने से सेवकजन की वृद्धि होती है, कन्या के सूर्य में किया गया कार्यारंभ रोगदायक सिद्ध होता है। तुला के सूर्य में सुख प्राप्त होता है और वृश्चिक के सूर्य में निर्माण का प्रारंभ करने से धनवृद्धि होती है। धन राशि के सूर्य में महा हानि, मकर के सूर्य में धन प्राप्ति, कुंभ के सूर्य में रत्न का लाभ और मीन के सूर्य में घर भयदायक होता है। (तात्पर्य : मेष, वृष, कर्क, सिंह, तुला, वृश्चिक, मकर, कुंभ - राशियों के सूर्य में करना हितकर है।)

घर के आरंभ में मासफल

गृहनिर्माण का आरंभ अगर चैत्र मास में किया जाय तो शोक, वैशाख में किया जाय तो धन प्राप्ति, जेठ मास में किया जाय तो मृत्युकारक, आषाढ़ में किया जाय तो हानि और श्रावण में किया जाय तो धनप्राप्ति होती है। भाद्रपद में निर्माण शुरु करने से घर शून्य रहता है, आसो में शुरु करने से क्लेश, कार्तिक में शुरु करने से घर वीरान रहता है, मागशर में करने से पूजा-सन्मान, पोष में करने से संपत्ति, माघ में अग्नि भय तथा फागुन में शुरु करने से सुखप्राप्ति होती है।

(तात्पर्य : वैशाख, श्रावण, मागशर, पोष, फाल्गुन मासों में करें)

हीरकलश मुनि ने कहा है

कार्तिक, महा, भाद्रपद, चैत्र, अश्विन, जेठ तथा आषाढ़ इन सात महीनों में गृहनिर्माण का आरंभ नहीं करना चाहिए। * बाकी के मागशर पोष, फागुन, वैशाख और श्रावण - इन पाँच महीनों में घर आरंभ किया जाय तो मंगलदायक है।

वैशाख, मागशर, सावन (श्रावण), फागुन और मतांतर से पोष इन पाँच महीनों में शुक्ल पक्ष में शुभ दिन देखकर निर्माणकार्य का आरंभ किया जाय तो सुख और वृद्धि की प्राप्ति होती है।

''पीयूषधारा'' टीका में जगमोहन का कथन है

पथ्थर, ईंट आदि के मकान का आरंभ निंदनीय मास में न करना चाहिए, परंतु घास और लकड़ी आदि के मकान का आरंभ करने में दोष नहीं है।

* ''मुहूर्त चिंतामणि'' में लिखते हैं कि - चैत्र में मेष का सूर्य हो, जेष्ठ में वृष का सूर्य हो, आषाढ़ मास में कर्क राशि का सूर्य हो, भाद्रपद में सिंह राशि का सूर्य हो, कार्तिक में वृश्चिक का सूर्य हो, पोष मास में मकर का सूर्य और माघ मास में मकर या कुंभ का सूर्य हो तब घर का आरंभ करना शुभ माना जाता है।

गृहारंभ में नक्षत्र फल

शुभलग्न और चन्द्रमा प्रबल देखकर अधोमुख संज्ञक नक्षत्र में खात मुहूर्त करना चाहिए तथा शुभ लग्न एवं चन्द्रमा बलवान हो तब ऊर्ध्वमुख संज्ञक नक्षत्र में शिला स्थापन करके मकान बनाने का आरंभ करना चाहिए।

(तात्पर्य : अधोमुख नक्षत्र में खात और ऊर्ध्वमुख में शिलास्थपन)

मांडव्य ऋषि का कहना है

अधोमुख नक्षत्रों में खात करना चाहिए, ऊर्ध्वमुख नक्षत्रों में शिला और प (पाटड़े) आदि का स्थापन करना चाहिए। तिर्यङमुख नक्षत्रों में द्वार, कपाट और वा बनाने चाहिए, मृदुसंज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा और अनुराधा) तथा ध्रुवसंज्ञ (ऊत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरा भाद्रपदा, रोहिणी) नक्षत्रों में गृहप्रवेश कर चाहिए।

नक्षत्रों की अधोमुखादि संज्ञा

श्रवण, आर्द्रा, पुष्य, रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रप शतभिषा और धनिष्ठा - ये नौ नक्षत्र ऊर्ध्वमुख नामवाले हैं। भरणी, आश्लेषा, पू फाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपदा, मूल, मघा, विशाखा और कृत्तिका ये नौ नक्ष अधोमुख नामवाले हैं।

इनके अतरिक्त बाकी के अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, हस्त, चित्रा, स्वा अनुराधा, ज्येष्ठा और रेवती ये नव नक्षत्र तिर्छामुख वाले है।

नक्षत्रों के शुभाशुभयोग मुहूर्त चिंतामणि में कहते हैं कि - पुष्य, उत्तराफाल्गु उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, मृगशिरा, श्रवण, आश्लेषा और पूर्वाषाढ़ा नक्षत्रों में से किसी नक्षत्र पर गुरु हो तब अथवा ये नक्षत्र और गुरुवार हो तब अगर का आरंभ किया जाय तो यह घर पुत्र एवं राज्य देनेवाला बनता है।

विशाखा, अश्विनी, चित्रा, धनिष्ठा, शतभिषा और आर्द्रा इन नक्षत्रों में से कि नक्षत्र पर शुक्र हो तब अथवा ये नक्षत्र और शुक्रवार हो तब अगर घर का आरंभ कि जाय तो वह घर धन और धान्य की प्राप्ति करानेवाला बनता है।

हस्त, पुष्य, रेवती, मघा, पूर्वाषाढ़ा, मूल - इन नक्षत्रों पर अगर मंगल हो अथवा ये नक्षत्र और मंगलवार हो तब अगर घर का आरंभ किया जाय तो वह घर में जल जाता है और पुत्रों के लिए पीडाकारक होता है।

रोहिणी, अश्विनी, उत्तराफाल्गुनी, चित्रा और हस्त इन नक्षत्रों पर बुध हो अथवा ये नक्षत्र और बुधवार हो तब अगर घर का आरंभ किया जाय तो वह सुखदायक तथा पुत्रदायक बनता है।

पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, ज्येष्ठा, अनुराधा, स्वाति और भरणी इन नक्षत्रों पर नि हो अथवा ये नक्षत्र और शनिवार हो तब अगर घर का आरंभ किया जाय तो वह र राक्षस और भूत आदि के निवासवाला बनता है।

कृत्तिका नक्षत्र के ऊपर सूर्य अथवा चन्द्रमा हो तब अगर घर का आरंभ किया ाय तो वह घर जल्दी अग्नि में भस्म हो जाता है।

थम शिला की स्थापना - प्रथम शिलास्थापना

पूर्व और उत्तर दिशा के मध्य भाग में ईशान कोण में नीम में प्रथम घी - चावल और पाँच रत्न रख कर और शिल्पियों का सन्मान करके प्रथम शिला का स्थापन करना चाहिए।

राजवल्लभ आदि कुछ शिल्पग्रंथों में शिला की प्रथम स्थापना अग्नि कोण में करने के लिये कहा गया है।

बात - लग्न विचार

शुक्र लग्नस्थान में, बुध दशवें, सूर्य ग्यारहवें और बृहस्पति केन्द्र में (1 - 4 - 7 - 0 स्थान में) हो ऐसे लग्न में अगर नवीन घर का खात मुहूर्त किया जाय तो वह घर सौ र्ष के आयुष्यवाला बनता है।

लग्न के दशवें और चौथे स्थान में गुरु और चन्द्रमा हो तथा ग्यारहवें स्थान में शनि अथवा मंगल हो ऐसे समय में अगर घर का आरंभ किया जाय तो उस घर में अस्सी वर्ष तक लक्ष्मी स्थिर रहती है। गुरु लग्न में (प्रथम स्थान में) शनि तीसरे स्थान में, शुक्र चौथे स्थान में, रवि छठवे और बुध सातवें स्थान में हो ऐसे लग्न के समय में अगर गृहनिर्माण का आरंभ किया जाय तो उस घर में लक्ष्मी सौ वर्ष तक स्थिर रहती है।

शुक्र लग्न में सूर्य तीसरे, मंगल छठे, गुरु पाँचवे स्थान में हो ऐसे लग्न में अगर निर्माणकार्य प्रारंभ किया जाय तो उस घर में दो सौ वर्ष तक अनेक प्रकार की ऋद्धि होगी।

कर्क राशि का चन्द्र लग्न में हो और बृहस्पति बलवान हो कर केन्द्र में (1 - 4 - 7 - 10 वें स्थान में रहा हो ऐसे लग्न के समय में आरंभ किये गये घर में धन धान्य की बहुत वृद्धि होती है। गृह निर्माण के आरंभकाल में अगर लग्न के आठवें स्थान में क्रूर ग्रह हो तो मध्यम फलदायक होता है।

अगर लग्न में कोई भी एक ग्रह नीच स्थान का, शत्रु के घर का या शत्रु के नवांश का हो कर सातवें अथवा बारहवें स्थान में रहा हो, और घरके स्वामी का वर्णपति निर्बल हो ऐसे समय में अगर घर का आरंभ किया जाय तो वह घर औरों के हाथ में चला जाता है।

गृहपति के वर्णपति :-

ब्राह्मण वर्ण के स्वामी शुक्र और गुरु, क्षत्रीय वर्ण के स्वामी रवि और मंगल वैश्य का स्वामी चन्द्र, शूद्र वर्ण का स्वामी बुध तथा म्लेच्छ वर्ण के स्वामी राहु औ शनि - इस प्रकार घर के स्वामी के वर्णपति हैं।

गृहप्रवेश मुहूर्त

नीम खनन के समय तथा नये घर में प्रवेश करते समय लग्न में सभी योग शुभ हे हुएभी आठवें स्थान में अगर कोई क्रूर ग्रह हो तो वह अवश्य स्वामी का विनाश कर है।

चित्रा, अनुराधा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, रेवती, मृगशि और रोहिणी - इन नक्षत्रों में अगर गृहप्रवेश करें तो धन - धान्यादि की वृद्धि हो मूल, आर्द्रा, आश्लेषा और ज्येष्ठा इन नक्षत्रों में प्रवेश करने से पुत्र का विनाश होता है

गृहारंभ तथा गृहप्रवेश पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपदा, मघा और भरण इन नक्षत्रों में करने से गृहस्वामी का नाश होता है। विशाखा नक्षत्र में करने से स्त्री विनाश होता है। कृत्तिका नक्षत्र में करने से अग्नि का उपद्रव होता है।

रिक्ता तिथि, मंगल अथवा रविवार, चरलग्न (मेष, कर्क, तुला और मकर लग्न कंटक आदि विरुद्ध योग, क्षीण चन्द्रमा, नीच का अथवा क्रूर ग्रह युक्त चन्द्रमा सबको गृहप्रवेश करते समय अथवा आरंभ करते समय छोड़ देना चाहिए। शेष तिथि वार, लग्न शुभ हैं। क्रूर ग्रह केन्द्र (1 - 4 - 7 - 10) स्थान में तथा दूसरे आठवें अथ बारहवें स्थान में हों तो अशुभ फलदायक हैं, किंतु तीसरे, छठे या ग्यारहवें स्थान में तो शुभ फलदायक होते हैं। शुभ ग्रह केन्द्र स्थान में, नववें, पाँचवें, तीसरे या ग्यारह स्थान में हों तो शुभदायक हैं और शेष ग्रह दूसरे, छठे, आठवें या ग्यारहवें स्थान में तो समान फलदायक हैं। गृहप्रवेश या गृहारंभ में शुभाशुभ ग्रहयंत्र -

वार	उत्तम	मध्यम	जघन्य
रवि	3-6-11	9-5	1-4-7-10-2-8-12
सोम	1-4-7-10-9-5-3-11	8-2-6-12	0
मंगल	3-6-11	9-5	1-4-7-10-2-8-1
बुध	1-4-7-10-9-5-3-11	8-2-6-12	0
गुरु	1-4-7-10-9-5-3-11	2-6-8-12	0
शुक्र	1-4-7-10-9-5-3-11	2-6-8-12	0
शनि	3-6-11	9-5	1-4-7-10-2-8-1
राहु-केतु	3-6-11	9-5-	1-4-7-10-2-8-2

ग्रहों की संज्ञा

सूर्य गृहस्थ, चंद्रमा गृहिणी (स्त्री) शुक्र, धन और गुरु सुख है। इनमें से जो ग्रह बलवान होता है वह अपने भाव का अधिक फल देता है इसमें संदेह नहीं है। जैसे कि सूर्य बलवान हो तो घर के स्वामी को और चन्द्र बलवान हो तो स्त्री को शुभ फल देता है। शुक्र बलवान हो तो धन और गुरु बलवान हो तो सुख देता है।

राजा आदि के पाँच पाँच ग्रहों का मान

राजा, सेनाधिपति, मंत्री, युवराज, अनुज (छोटा भाई - सामंत) रानी, नैमित्तिक (ज्योतिषी), वैद्य और पुरोहित इन सबके उत्तम, मध्यम, विशेष मध्यम, जघन्य और अति जघन्य इस प्रकार पाँच पाँच जाति के घर बनते हैं। इसमें उत्तम, जाति के घर का विस्तार क्रमशः 108, 64, 60, 80, 40, 30, 40, 40 और 40 हाथ का है। इनमें प्रत्येक में से अनुक्रम से 8, 6, 4, 6, 4, 6, 4, 4 और 4 हाथ बार बार घटाने से मध्यम, विमध्यम, जघन्य और अति जघन्य घर का विस्तार होता है। यह विस्तार सभी मुख्य घर का समझना चाहिए। इस विस्तार में विस्तार का चौथा, छठा, आठवाँ, तीसरा, तीसरा, आठवाँ, छठा, छठा और छठा भाग अनुक्रम से जोड़ने से सब घरों की लंबाई का मान होता है।

❊ राजा आदि के पाँच पाँच घरों का मानयंत्र ❊

संख्या	मानहाथ	राजा	सेनापति	मंत्री	युवराज	अनुज	राणी	ज्योतिषी	वैद्य	पुरोहित
उत्तम	विस्तार	108	64	60	80	40	30	40	40	40
1	लंबाई	135	74-16	67-12	106-16	53-8	33-18	46-16	46-16	46-16
मध्यम	विस्तार	100	58	56	74	36	24	36	36	36
2	लंबाई	125	67-16	63	98-16	48	27	42	42	42
विमध्यम	विस्तार	92	52	52	68	32	18	32	32	32
3	लंबाई	115	60-16	58-12	90-16	42-16	20-6	37-8	37-8	37-8
कनिष्ठ	विस्तार	84	46	48	62	28	12	28	28	28
4	लंबाई	105	53-16	54	82-16	37-8	13-12	32-16	32-16	32-16
अति कनिष्ठ	विस्तार	76	40	44	56	24	6	24	24	24
	लंबाई	95	46-16	49-12	74-16	32	6-18	28	28	28

चार वर्णों के घरों का मान

ब्राह्मण के घर का विस्तार बत्तीस हाथ है। उसमें से अनुक्रम से चार चार हा
घटाने से सोलह हाथ रहे तब तक घटाते रहना चाहिए। तब क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अ
अंत्यज जाति के घरों का मान होता है। उदाः- ब्राह्मण जाति के घर का विस्तार
हाथ क्षत्रिय जाति के घर का विस्तार 28 हाथ, वैश्य जाति के घर का विस्तार 24 हा
शूद्र जाति के घर का विस्तार 20 हाथ और अंत्यज जाति के घर का विस्तार 16 ह
है। इन जातियों के घरों के विस्तार में क्रमशः दसवाँ, आठवाँ, छठा और चौथा भ
जोड़ने से लंबाई का मान होता है।

※ चार वर्णों के घरों का मानयंत्र ※

	ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र	अंत्यज
विस्तार	62	28	24	20 .	16
लंबाई	35/4+8.75	31-12	28	25	20

मुख्य घर तथा अलिंद की समझ

घरों की जो लंबाई और चौड़ाई बताई गई है इसे मुख्य घर का मान समझें। बा
द्वार के बाहरी भाग में जो बरामदा इत्यादि हो उसे अलिंद समझें। दीवार के अंदर
भाग में कमरे, शाला या बाजु की लघुशाला इत्यादि हों इन सबको मुख्य घर सम
अर्थात् मुख्य शाला के मध्य में छोटे कमरे इत्यादि हों उन सबको मुख्य (मूल)
समझें।

अलिंद (अहाते) का प्रमाण

ऊंचाई में एक सौ सात अंगुल, गर्भ में पिचासी (85) अंगुल और (शाला)
लंबाई के अनुसार लंबाई यह प्रत्येक अलिंद का मान समझना चाहिए।

शाला और अलिंद का मान "राजवल्लभ" में इस प्रकार है - घर का विस्
जिस प्रकार हो उसमें 70 हाथ जोड़कर 14 से विभाजित करने से जो मिले उतने ह
का शाला का विस्तार करना चाहिए।

शाला का विस्तार जितने हाथ का हो उसमें 35 जोड़कर 14 से विभाजित क
जो लब्धि मिले उतने हाथ का अलिंद का विस्तार करना चाहिए। "समरांगण" में
कहा है कि - शाला के विस्तार से अलिंद का विस्तार आधा करना चाहिए और प्रत
घर में उसी प्रकार समझना चाहिए। गज (हाथ) का स्वरुप - इस प्रकार है:-

चौबीस पर्व अंगुल अथवा छत्तीस कर अंगुल की एक कंबिका होती है -
गज=24 इंच) आठ आड़े जव की एक पर्व अंगुल समझें।

देवमंदिर, राजमहल, तालाब, गढ़ और वस्त्र - इन सब की भूमि का नाप गज से
करना चाहिए। सामान्य घर का नाप गृहस्वामी के हाथ से करना चाहिए।

"समरांगण सूत्रधार" आदि शिल्पग्रंथों में तीन प्रकार के ये गज माने गये हैं -

आठ आड़े जव का एक अंगुल, ऐसे चौबीस अंगुल का एक गज - यह ज्येष्ठ गज
। सात आड़े जव का एक अंगुल और ऐसे चौबीस अंगुल का एक गज - यह मध्यम
गज है। छे आड़े जव का एक अंगुल - ऐसे चौबीस अंगुल का एक गज - यह कनिष्ठ गज
। गज में तीन तीन अंगुल की दूरी पर एक एक पर्व रेखा करें। ऐसी पर्व रेखाएँ आठ
ंगी। प्रत्येक पर्वरिखा पर फूल का आकार बनायें। चौथी पर्व रेखा पर गज का
ध्यमाग समझें। मध्यभाग के आगे के पाँचवें अंगुल के दो भाग दो भाग, आठवें
ंगुल के तीन भाग और बारहवें अंगुल के चार भाग करें।

(वर्तमान काल में गज = 24 इंच = 2 फीट समझें)

ज के नव देवताओं के नाम

गज के प्रथम छोर का देव रुद्र, प्रथम फूल का देव वायु, दूसरे फूल का देव
वेश्वकर्मा, तीसरे फूल का देव अग्नि, चौथे फूल का देव ब्रह्मा, पाँचवें फूल का देव यम,
ठे फूल का देव वरुण, सातवें फूल का देव सोम और आठवें फूल का देव विष्णु है।
नमें से कोई भी देव अगर शिल्पी के हाथों द्वारा गज उठाते समय दिखाई दे तो अनेक
कार के अशुभ फल देता है। अतः नवीन गृह निर्माण आरंभ करते समय गज को फूलों
के मध्य भाग से उठाना चाहिए। उठाते समय अगर गज हाथों में से गिर जाय तो कार्य
में विघ्न आता है।

गज को रुद्र और वायु देव के मध्य भाग से उठाया जाय तो धनप्राप्ति और
कार्यसिद्धि होती है। वायु और विश्वकर्मा देव के मध्य भाग से उठाया जाय तो कार्य
चारु रुप से पूर्ण होता है। अग्नि और ब्रह्मा देव के मध्य भाग से उठाया जाय तो पुत्र
ो प्राप्ति और कार्य सिद्धि होती है। ब्रह्मा और यम देव के मध्य भाग से अगर गज को
ठाया जाय तो शिल्पी का विनाश होता है। यम और वरुण देव के मध्य भाग से उठाया
ाय तो मध्यम फलदायक होता है। वरुण और सोम देव के मध्य भाग उठाने से मध्यम
ल की प्राप्ति होती है। सोम और विष्णु के मध्य भाग से उठाने से अनेक प्रकार की
ख समृद्धि होती है।

ल्पी के आठ प्रकार के सूत्र (साधन)

सूत्रों के ज्ञाता सूत्रधारों ने आठ प्रकार के सुत्र कहे हैं : 1. दृष्टि सूत्र, 2. गज, 3.

मुंज का धागा, 4. सूत्र का धागा, 5. अवलंब (ओळंबा), 6. समकोण, 7. रे
(साधणी), 8. विलेख्य। ये शिल्पी के आठ प्रकार के सूत्र हैं।

घर आदि की आय लाने की रीत

नींव के ओसार की भूमि को छोड़कर बाकी के ओसार के मध्य भाग की भूमि
लंबाई चौड़ाई को गृहस्वामी के हाथों से नापकर दोनों का गुणन करें। जो गुणन
मिले इसे क्षेत्रफल समझें। क्षेत्रफल को आठ से विभाजित करने से जो शेष बचे
ध्वज आदि आय समझें।

"राजवल्लभ" में कहा है कि पलंग, आसन और घर इत्यादि में ओसार
छोड़कर मध्य में रही हुई भूमि को नापकर आय लायें, किंतु देवमंदिर या मंडप आ
ओसार सहित भूमि नाप कर आय लाना चाहिए।

आठ आय के नाम :-

ध्वज, धूम, सिंह, श्वान, वृष, खर, गज और काक ये आठ आय के नाम है
पूर्वादि दिशा में सृष्टिक्रम से अर्थात् पूर्व में ध्वज, अग्नि कोण में धूम, दक्षिण दिश
सिंह, इत्यादि आठों दिशाओं में क्रम से रहते हैं। वे अपने नामों के अनुसार फल देते
हैं।

✻ आय चक्र ✻

संख्या	1	2	3	4	5	6	7	8
आय	ध्वज	धूम	सिंह	श्वान	वृष	खर	गज	ध्वांक्ष
दिशा	पूर्व	अग्नि	दक्षिण	नैऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान

आय के अनुसार द्वार की समझ

घर का आय अगर ध्वज आये तो पूर्व आदि चारों दिशाओं में द्वार रखे जा स
हैं। सिंह आय आये तो पश्चिम दिशा को छोड़कर पूर्व, उत्तर और दक्षिण इन त
दिशाओं में द्वार रखे जा सकते हैं। वृषभ आय आये तो पूर्व दिशा में द्वार बनाना चा
और गज आय आये तो पूर्व एवं दक्षिण दिशा में द्वार रखे जा सकते हैं।

एक आय के स्थान पर दूसरा आय आ सकता है या नहीं? इस प्रश्न का
"आरंभसिद्धि" में दिया गया है :-

सर्व आय के स्थान पर ध्वज आय दी जा सकती है। सिंह आय के स्थान पर ध्
गज आय के स्थान पर ध्वज अथवा सिंह में से कोई भी एक, वृष आय के स्था
ध्वज, सिंह अथवा गज - इन तीन में से कोई भी आय दी जा सकती है। सारांश
कि सिंह आय जहाँ देना है उस स्थान में सिंह आय न मिले तो ध्वज दिया जा सक

स प्रकार एक आय के अभाव में दूसरा आय ऊपर दी गई समझ के अनुसार दिया जा
कता है। परंतु वृष आय के स्थान पर वृष आय ही देना चाहिए, अन्य किसी आय के
थान में वृष आय दिया जा नहीं सकता।

कस किस स्थान में कौन-कौन सा आय देना

ब्राह्मण के घर में ध्वज आय, क्षत्रिय के घर में सिंह आय, वैश्य के घर में वृष आय,
द्र के घर में गज आय और मुनि (संन्यासी) के आश्रम में ध्वांक्ष आय दिया जाना
ाहिए।

ध्वज, गज और सिंह ये तीन आय उत्तम स्थान में, ध्वज आय सर्व स्थानों में, गज
सिंह और वृष आय ये तीन आय नगर, गाँव, किले आदि स्थानों में दिये जाने चाहिए।

बाव, कुआँ, तालाब और शय्या (पलंग आदि) इन स्थानों में गज आय देना श्रेष्ठ
सिंहासन आदि आसनों में सिंह आय श्रेष्ठ है। भोजन के पात्रों में वृष आय श्रेष्ठ है। छत्र
ामर आदि में ध्वज आय श्रेष्ठ है।

वृष गज और सिंह ये तीन आय नगर प्रासाद (राजमहल या देवमंदिर) और
त्येक घर इन स्थानों में देना चाहिए। श्वान आय म्लेच्छ आदि के घरों में तथा ध्वांक्ष
ाय सन्यासियों के मठ, उपाश्रय आदि स्थानों में देना चाहिए।

रसोईघर तथा अग्नि के द्वारा आजीविका चलानेवालों के घरों में धूम्र आय दिया
ाना चाहिए। वेश्या के घर में खर तथा राजमहल में ध्वज, गज तथा सिंह आय दें।

र के नक्षत्रों की समझ

घर बनाने की भूमि की लंबाई - चौड़ाई का गुणन करें। जो गुणनफल मिले वह घर
ा क्षेत्रफल है। क्षेत्रफल को आठ से गुणित करके सताईस से विभाजित करें। जो शेष
चे वह घर का नक्षत्र है।

र की राशि की समझ

घर के नक्षत्र को चार से गुणित कर नव से विभाजित करने पर जो लब्धि मिले
से घर की भुक्त राशि समझें। यह घर की राशि तथा गृहस्वामी की राशि परस्पर छठी
र आठवीं अथवा दूसरी और बारहवीं हो तो अशुभ समझें।

स्तुशास्त्र में राशि का ज्ञान इस प्रकार दिया गया है

अश्विनी आदि तीन नक्षत्र मेष राशि के, मघा आदि तीन नक्षत्र सिंह राशि के
र मूल आदि तीन नक्षत्र धन राशि के हैं। बाकी की नव राशियों के दो दो नक्षत्र हैं।
स्तुशास्त्र में नक्षत्र में चरण भेद के द्वारा राशि मानी नहीं गई है। विशेष स्पष्टता के
ये नीचे दिये गये गृहराशि यंत्र में देखें :-

✻ गृहराशियंत्र ✻

मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धन	मकर	कुंभ
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11
अश्विनी	रोहिणी	आर्द्रा	पुष्य	मधा	हस्त	स्वाति	अनुराधा	मूल	श्रवण	शतभिषा
भरणी	मृगसिर	पुनर्वसु	आश्लेषा	पू.फा.	चित्रा	विशाखा	ज्येष्ठा	पू.षा.	धनिष्ठा	पू.भा.
कृतिका	0	0	0	उ.फा.	0	0	0	उ.षा.	0	0

व्यय लाने का प्रकार

घर के नक्षत्रों की संख्या को आठ से विभाजित करें, जो शेष बचे उसे समझें। यक्ष, राक्षस और पिशाच ये तीन प्रकार के व्यय हैं। आय की संख्या से व्यय संख्या कम हो तो यक्ष नाम का व्यय, अधिक हो तो राक्षस व्यय और बराबर हो पिशाच व्यय समझना चाहिए।

व्यय का फल

घर का व्यय अगर यक्षव्यय हो तो धन धान्यादि की वृद्धि होती है। राक्षस व्य तो धनधान्यादि का विनाश होता है और अगर पिशाच व्यय हो तो मध्यम फलद होता है। नीचे दिये गये तीन अंशों में से यम नामक अंश को छोड़ देना चाहिए।

अंश लाने का प्रकार

घर के क्षेत्रफल की संख्या, ध्रुव आदि घर के नामाक्षर की संख्या और व्यय संख्या इन तीनों को जोड़कर तीन से विभाजित करें। जो शेष रहे वह अंश है। शेष रहे तो इंद्र अंश, दो रहे तो यम अंश, और शून्य रहे तो राज अंश जाने।

तारा की समझ

घर के नक्षत्र से घर के स्वामी के नक्षत्र तक गिनें, जो संख्या मिले उसे विभाजित करें, जो शेष रहे वह तारा है। इन में छठी, चौथी और नववीं तारा शु दूसरी, पहली और आठवीं तारा मध्यम फलदायी है। तीसरी, पाँचवी और सातवीं अधम है।

आय आदि जानने का उदाहरण

मानों घर बनाने की भूमि 7 हाथ और 9 अंगुल लंबी है तथा 5 हाथ और 7 चौड़ी है। प्रथम हाथ के अंगुल बनाने के लिए हाथ को 24 से गुणित करें - 7 x 168 + 9 = 177 अंगुल लंबाई हुई। 5 x 24 = 120 + 7 = 127 अंगुल

हुई। इन दोनों का गुणन करने से 177 x 127 = 22479 क्षेत्रफल हुआ। क्षेत्रफल को आठ से विभाजित करें तो 22479 / 8 तो शेष 7 रहते हैं। तो सातवाँ गज आय समझें।

घर का नक्षत्र निश्चित करने के लिये क्षेत्रफल को आठ से गुणित करें - 22479 x 8 = 179832 - इसे 27 से विभाजित करने से 12 शेष रहते हैं, तो बारहवाँ उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र है।

घर की भुक्त राशि जानने के लिये घर का उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र जो बारहवाँ है उसे 4 से गुणित करने से 48 मिलते हैं। इसे नव से विभाजित करने से लब्धि 5 मिली। तो घर की राशि पाँचवीं अर्थात् सिंह राशि है।

व्यय जानने के लिये घर का नक्षत्र उत्तरा फाल्गुनी जो बारहवाँ है उसे आठ 8 से विभाजित करने से 4 शेष रहते हैं। यह आय के अंक से कम है अतः यक्ष व्यय हुआ।

अंश जानने के लिए घर के क्षेत्रफल में जिस राशि का घर उस राशि के अक्षरों की संख्या को जोड़ दें। मानों विजय नाम का घर है तो उसके वर्णाक्षर तीन हैं उसमें व्यय का अंक 4 मिलाने से 22479 + 3 + 4 = 22486 हुए। इस संख्या को तीन से विभाजित करें तो शेष 1 मिलेगा। अर्थात् इंद्रांश हुआ।

तारा जानने के लिए घर के नक्षत्र उत्तरा फाल्गुनी से गृहस्वामी के नक्षत्र रेवती तक गिनने से 16 की संख्या मिलती है। इस में से 9 घटाने पर 7 शेष रहते हैं तो सातवीं तारा समझें।

आय आदि का अपवाद "विश्वकर्मा प्रकाश" में इस प्रकार बताया गया है - जिस घर की लंबाई 11 जौ से अधिक 32 हाथ तक हो ऐसे घर में तो आय व्यय आदि का विचार करना चाहिए, किंतु 32 हाथ से अधिक लंबाई वाले घर हो उनमें आय-व्यय आदि का विचार करना आवश्यक नहीं है तथा जीर्ण मकान का पुनरुद्धार करते समय भी आय- व्यय या मास शुद्धि आदि का विचार करना आवश्यक नहीं है।

"मुहूर्त मार्तण्ड" में भी कहा है - जो घर बत्तीस हाथ से अधिक लंबा हो, चार द्वारवाला हो, घास का हो तथा अलिन्द निर्व्यूह (मादल) इत्यादि ठिकानों के लिये आय-व्यय आदि का विचार ने करें। इसी प्रकार घास का घर बनाना हो तो किसी भी मास में किया जा सकता है।

घर के साथ मालिक की शुभाशुभ लेनदेन का विचार

जिस प्रकार ज्योतिष शास्त्र के अनुसार कन्या और वर का परस्पर प्रेमभाव देखा जाता है उसी प्रकार घर और घर के स्वामी की लेनदेन आदि का विचार ✻योनि, गण, राशि और नाडीवेध द्वारा अवश्य करना चाहिए।

✻योनि गण राशि नाडीवेध आदि का खुलासा प्रतिष्ठा संबंधी मुहूर्त के परिशिष्ट में देखें।

परिभाषा

कमरे का अर्थ शाला है। जिसमें दो शालाएँ (कमरे) हों उसे घर कहते हैं। अर्थात् अलिन्द (अहाता)। जहाँ एक दो अथवा तीन अलिंद हो उसे पटशाला कहते पटशाला के द्वार की दोनों ओर जाली (झरोखे) युक्त दीवार तथा मंडप होते हैं। दाहिनी और बांई ओर अलिंद होता है उसे गुंजारी कहते हैं। स्तंभ का नाम षट्दारु स्तंभ के ऊपर जो लंबा बड़ा लकड़ा रखा जाता है उसे भारवट कहते हैं। पीढ़, कड़ी धरण ये तीनों एक ही शब्द के पर्यायवाची हैं। कमरे से ले कर पटशाला तक मुख्य समझें और बाकी रसोईघर आदि जो हैं ये मुख्य घर के आभूषणरुप हैं।

घरों के भेद का कारण

कमरे (शाला) अलिंद, गति, गुंजारी, दीवार, पट्ट स्तंभ, जाली और मंडप के भेदों द्वारा घरों के अनेक प्रकार होते हैं।

जिस प्रकार चौदह गुरु अक्षरों के लघु-गुरु के भेद के द्वारा प्रस्तार होता है, प्रकार शाला, अलिंद आदि के भेद द्वारा सोलह हजार तीन सौ चौरासी प्रकार के बनते हैं।

अतः आधुनिक समय में जो भी ''ध्रुव'' आदि तथा ''शांतन'' आदि घर हैं नाम आदि एकत्रित करके उनके लक्षण और चिह्नों का मैं (ठक्कुर फेरु) वर्णन करता

ध्रुव आदि घरों के नाम

ध्रुव, धान्य, जय, नंद, खर, कांत, मनोरम, सुमुख, दुर्मुख, क्रूर, सुपक्ष, क्षय, आक्रंद, विपुल और विजय ये सोलह प्रकार के घर हैं।

प्रस्तार विधि

चारगुरु अक्षरों का प्रस्तार करना हो तो प्रथम पंक्ति में चारों अक्षर गुरु बाद में दूसरी पंक्ति में प्रथम गुरु अक्षर के नीचे एक लघु अक्षर लिखकर बाकी लिखे अनुसार लिखें। बाद में तीसरी पंक्ति में उपर के लघु अक्षर के नीचे गुरु और अक्षर के नीचे लघु अक्षर लिख कर बाकी उपर लिखे अनुसार लिखें। इस प्रकार अक्षर लघु बन जाय तब तक बार बार यह क्रिया करें। लघु अक्षर के लिये (1) और अक्षर के लिये (S) ऐसा चिह्न करें।

विशेष नीचे प्रस्तार में देखें -

1 S S S S	5 S S 1 S	9 S S S 1	13 S S 1 1
2 1 S S S	6 1 S 1 S	10 1 S S 1	14 1 S 1 1
3 S 1 S S	7 S 1 1 S	11 S 1 S 1	15 S 1 1 1
4 1 1 S S	8 1 1 1 S	12 1 1 S 1	16 1 1 1 1

जिस प्रकार चार अक्षरवाले छंद के प्रस्तार के 16 भेद होते हैं उस प्रकार लघुरुप ला के द्वारा ध्रुव, धान्य आदि सोलह प्रकार के घर होते हैं। लघु के स्थान में शाला र गुरु के स्थान में दीवार समझें। जिस प्रकार प्रथम चारों गुरु अक्षर हैं उसी प्रकार थम ध्रुव नाम के घर की चारों दिशाओं में दीवारें हैं लेकिन शाला नहीं है। प्रस्तार के सरे भेद में प्रथम लघु है उस प्रकार यहाँ धान्य नामक दूसरे घर में पूर्व दिशा में शाला मझनी चाहिए। प्रस्तार के तीसरे भेद में दूसरा अक्षर लघु है उस प्रकार यहाँ तीसरे य नाम के घर में दक्षिण दिशा में शाला समझनी चाहिए। प्रस्तार के चौथे भेद में प्रथम अक्षर लघु हैं उस प्रकार यहाँ चौथे नन्द नाम के घर में पूर्व और दक्षिण दिशा में एक क शाला समझनी चाहिए। इसी प्रकार हरेक घर में समझ लें। अधिक जानकारी के ये नीचे का गृहप्रस्तार देखें। ध्रुव आदि घरों का फल अपने नाम के अनुसार जानें।

ध्रुवादि घरों का फल ''समरांगण'' में इस प्रकार बताया गया है:-

ध्रुव नाम का प्रथम घर जयकारक है। धान्य नाम का घर धान्य की वृद्धि नेवाला है। जय नाम का घर शत्रुओं को जीतनेवाला है। नंद नाम का घर सर्व प्रकार समृद्धि देता है। खर नामक घर क्लेशदायक है। कान्त नामक घर में लक्ष्मी प्राप्त ती है एवं आयुष्य आरोग्य तथा धनसंपत्ति की वृद्धि होती है। मनोरम नाम का घर ामी के मन को संतोष देनेवाला बनता है। सुमुख नाम का घर राज सन्मान प्राप्त ानेवाला सिद्ध होता है। दुर्मुख नाम का घर कलह कराता है। क्रूर नाम का घर ंकर व्याधि एवं भय को जन्म देने वाला होता है। सुपक्ष घर परिवार की वृद्धि करता धनद नामक घर सुवर्ण, रत्न तथा गाय आदि पशुओं की वृद्धि करता है। क्षय नामक सर्वक्षयकारक सिद्ध होता है। आक्रंद नाम का घर ज्ञातिजनों की मृत्यु करवाता है। पुल नामवाला घर आरोग्य एवं कीर्तिदाता होता है विजय नामक घर सर्व प्रकार की ात्ति का दाता सिद्ध होता है।

शांतन आदि द्विशाल घरों के नाम

1. शान्तन, 2. शांतिद, 3. वर्धमान, 4. कुक्कुट, 5. स्वस्ति
6. हंस, 7. वर्धन, 8. कर्बूर, 9. शान्त, 10. हर्षण, 11. वि
12. कराल, 13. वित्त, 14. चित्त (चित्र), 15. धन, 16. काल
17. बंधुद, 18. पुत्रद, 19. सर्वांग, 20. कालचक्र, 21. त्रि
22. सुंदर, 23. नील, 24. कुटिल, 25. शाश्वत, 26. शा
27. शील, 28. कोटर, 29. सौम्य, 30. सुभद्र, 31. भद्र
32. क्रूर, 33. श्रीधर, 34. सर्वकामद, 35. पुष्टिद, 36. कीर्तिन
37. श्रृंगार, 38. श्रीवास, 39. श्रीशोभ, 40. कीर्तिशो
41. युग्मशिखर (युग्मश्रीधर) 42. बहुलाभ, 43. लक्ष्मीनि
44. कुपित, 45. उधोत, 46. बहुतेव, 47. सुतेज, 48. कलह
49. विलास, 50. बहुनिवास, 51. पुष्टिद, 52. क्रोधस
53. महंत, 54. महिन, 55. दुःख, 56. कुलच्छेद, 57. प्रताप
58. दिव्य, 59. बहुदुःख, 60. कंठछोटन, 61. जंगम,62. सिं
63. हस्तिज, 64. कंटक इस प्रकार 64 घरों के नाम हैं। अब इनके लक्षण औ
कहते हैं।

दो शाला (कमरें) वाले घरों का स्वरूप 'राजवल्लभ' में इस प्रकार बताया
हैं-

घर बनानेवाली भूमि में लंबाई और चौड़ाई के तीन भाग करने से नव भाग
हैं। इसमें मध्य भाग को छोड़कर बाकी के आठ भागों में से दो-दो भागों की
(कमरे) बनाने चाहिये और बाकी की भूमि को खाली छोड़ दिया जाना चाहिये
प्रकार चारों दिशाओं में चार प्रकार की शाला बनती है ।

दक्षिण और अग्निकोण के भाग में दो शाला कमरे हों और मुख उत्तर दिशा
तो उसे हस्तिनी शाला कहा जायेगा। नैऋत्य और पश्चिम दिशा में हो तो यह
शाला है। वायव्य और उत्तर दिशा के भाग में दो शाला हो और मुख अगर दक्षिण
में हो तो यह गावी शाला है और ईशान और पूर्व दिशा के भाग में दो शाला हो
अगर यह पश्चिमाभिमुख हो तो इसे छागी शाला कहेंगे।

हस्तिनी और महिषी ये दो शालाएँ एक साथ हो, ऐसे घर का नाम 'सि
और यह अपने नामानुसार फलदायक सिद्ध होता हैं। महिषी और गावी ये दो
अगर एक साथ हों तो इसे यमसूर्य घर कहेंगे। यह घर मृत्युकारक है। गावी और
शालाएँ साथ हो, ऐसे घर का नाम दंड है और धन हानि करने वाला है। हस्ति
छागी ये दो शालाएँ साथ हो, ऐसे घर का नाम काँच है और यह हानिकारक हो

र गावी शालाएँ जहाँ साथ हो, ऐसे घर को चुल्ही कहते हैं और यह अशुभ माना
ता है। इस प्रकार अनेक प्रकार के घर बनते हैं। इसे जानने के लिए समरांगण तथा
नवल्लभ आदि शिल्पग्रंथ देखें।

तनादि घरों का स्वरूप

केवल दो शाला (कमरें) वाले घर को शांतन नाम का घर कहते हैं। जिस घर में
राभिमुख शांतिन हस्तिनीशाला हो, उसे शांतिन नामक घर कहेंगे। पूर्वाभिमुख
हिषीशाला वाला घर 'शान्तिद' घर है। दक्षिण दिशा के मुखवाली गावी शाला वाला
'वर्धमान' घर है और पश्चिमाभिमुख छागी शाला वाला घर कुर्कुट घर है।

शान्तन 1 शान्तिद 2 बर्द्धमान 3 कुक्कुट 4
स्वस्तिक 1 हंस 2 बर्द्धन 3 कर्बूर 4
शान्त 1 हर्षणा 2 विपुल 3 कराल 4
वित्त 1 चित्त 2 धन 3 कालदंड 4

शांतनादि दो शाला वाले चार घरों के मध्य में षड-दारु हो और द्वार के आगे एक
अलिंद हो तो स्वस्तिक आदि चार प्रकार के घर बनते हैं। शांतन नामक घर में
दारु और मुख के सामने एक अलिंद हो तो यह 'स्वस्तिक' घर कहलायेगा। शांतिद
के मध्य में षड्दारु और आगे एक अलिंद हो तो यह 'हंस' नामक घर है। वर्धमान घर
मध्य में षड्दारु और आगे एक अलिंद हो तो यह 'वर्द्धन' घर कहलायेगा। कुर्कुट घर
मध्य में षड्दारु और द्वार के सामने एक अलिन्द हो तो इसे 'कर्बूर' नामक घर
गे।
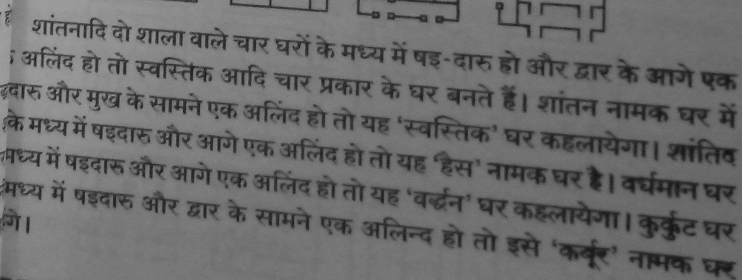
स्वस्तिक घर के अग्रभाग में दूसरा एक अलिंद हो तो यह 'शांत' नामक घर हंस घर के आगे दूसरे एक अलिंद हो तो यह घर 'हर्षण' है। वर्धन घर के आगे दू अलिंद हो तो यह घर 'विपुल' है। कर्बूर घर के सामने अगर दूसरा अलिंद हो तो 'कराल' घर है।

शांत घर की दक्षिण दिशा में स्तंभवाला एक अलिंद हो तो वह 'वित्त' कहलायेगा। हर्षण घर की दक्षिण दिशा में स्तंभवाला एक अलिंद हो तो इसे 'चित्र' कहेंगे। विपुल घर के दक्षिण में स्तंभ युक्त एक अलिंद हो तो यह 'धन' नाम का कहलायेगा। कराल घर के दक्षिण में स्तंभ युक्त अलिंद हो तो यह 'कालदंड' कहलायेगा।

वित्त घर की बांई ओर एक अलिंद हो तो यह 'बंधुद' घर है। चित्र घर की बांई अलिंद हो तो इसे 'पुत्रद' घर कहेंगे। धन घर की बांई ओर अलिंद हो तो यह 'स घर कहलायेगा। कालदंड घर की बांई तरफ अलिंद हो तो वह 'कालचक्र' कहलायेगा।

शांतन घर के पीछे और दाहिनी बाजु एक एक अलिंद हो तथा द्वार के सन्मु
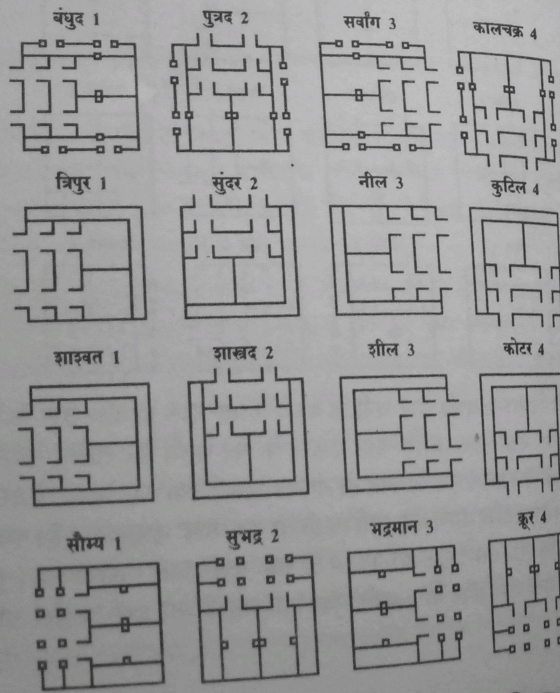
अलिंद हो तो यह 'त्रिपुर' घर है। शांतिद घर के पीछे और दाहिनी तरफ एक एक अलिंद हो तथा आगे दो अलिंद हो तो इसे 'सुंदर' घर कहेंगे। वर्धमान घर के पीछे और दाहिनी तरफ एक एक अलिंद हो तथा द्वार के आगे दो अलिंद हो तो यह 'नील' घर कहलायेगा। कुक्कुट घर के पीछे और दाहिनी ओर एक एक अलिंद हो तथा आगे दो अलिंद हो तो यह 'कुटिल' घर कहलाता है।

दो शालावाले घर के पीछे दाहिनी और बांई ओर एक एक अलिंद हो तथा आगे दो अलिंद हो ऐसे घर का द्वार अगर उत्तर में हो तो ऐसे घर को 'शाश्वत' घर कहा जायेगा। यह सब मनुष्यों के लिये शांतिदाता है। इस घर का द्वार अगर पूर्व दिशा में हो तो यह घर 'शास्त्रद', दक्षिण में हो तो 'शील' और पश्चिम में हो तो 'कोटर' कहलाता है।

दो शालावाले घर की दाहिनी एवं बांइ तरफ एक एक अलिंद हो और आगे दो अलिंद हो तथा शाला (कमरों) के मध्य में स्तंभ हो ऐसे घर का द्वार अगर उत्तर में हो तो यह 'सौम्य' घर कहलायेगा, पूर्व दिशा में हो तो 'सुभद्र', दक्षिण दिशा में हो तो 'भद्रमान' और पश्चिम दिशा में हो तो 'क्रूर' घर कहलायेगा।

दो शालावाले घर के आगे तीन अलिंद हो और बाकी की तीनों दिशाओं में एक एक अलिंद हो तथा स्तंभ पट्ट सहित हो, ऐसे घर का द्वार अगर उत्तर दिशा में हो तो यह 'श्रीधर' नामक घर है। ऐसे घर का द्वार अगर पूर्व दिशा में हो तो 'सर्वकामद', दक्षिण में हो तो 'पुष्टिद' तथा पश्चिम में हो तो 'कीर्तिविनाश' घर कहलाते हैं।

जिस दो शालावाले घर की तीनों दिशाओं में दो दो अलिंद और आगे भी स्तंभयुक्त दो अलिंद हो तथा अलिंद के आगे खिड़कियाँ वाला मंडप हो ऐसे घर का मुख यदि पूर्व दिशा में हो तो वह 'श्रीनिवास', दक्षिण में हो तो 'श्रीशोभ' और पश्चिम में हो तो 'कीर्तिशोभन' घर कहलाता है।

जिस दो शालावाले घर के अग्रभाग में तीन भद्रयुक्त अलिंद हो, शेष पूर्ववत् अर्थात् तीनों दिशाओं में दो दो गुंजारी स्तंभसहित हो तथा अलिंद के आगे खिड़की वाले मंडप हो ऐसे घर का द्वार अगर उत्तर दिशा में हो तो यह घर 'युग्मश्रीधर' कहलाता है। यह घर अति मंगलदायक और समृद्धिओं का निवास होता है। इस घर का मुख अगर पूर्व दिशा में हो तो 'बहुलाभ' दक्षिण में हो तो 'लक्ष्मीनिवास' और पश्चिम दिशा में हो तो 'कुपित्त' घर कहलाता है।

दो शालावाले घर के मुख के आगे अगर दो अलिंद और जालीवाले मंडप हों, पीछे की ओर एक तथा दाहिनी ओर दो अलिंद हो और दीवारें स्तंभयुक्त हो ऐसे घर का द्वार अगर उत्तर दिशा में हो तो यह घर 'उद्योत' घर हैं और यह धन का निवासस्थान होता है। इस घर का द्वार अगर पूर्व दिशा में हो तो यह 'बहुतेज' दक्षिण में हो तो 'सुतेज' और पश्चिम में हो तो 'कलहावह' घर है।

उद्योत घर के पीछे और दाहिनी ओर दो दो अलिंद दीवार के अंदर के भाग हो, मानों घर की दो भमती हो ऐसे घर का द्वार अगर उत्तर में हो तो यह घर 'विला पूर्व में हो तो 'बहुनिवास', दक्षिण में हो तो 'पुष्टिद' और पश्चिम में हो तो 'क्रोधसन्नि कहलाता है।

विलास घर के संमुख मंडपयुक्त तीन अलिंद हो तो इस घर को 'मह कहेंगे। यह घर महारिद्धिमय और संतानों की वृद्धि करनेवाला होता है। इस घर मुख अगर पूर्व दिशा में हो तो इसे 'महित्त', दक्षिण में हो तो 'दुःख' और पश्चिम में तो 'कुलछेद' घर कहते हैं।

दो शालावाले घर के अग्रभाग में तीन अलिंद और जालीयुक्त मंडप तीनों दिशाओं में दो दो अलिंद हो तथा मध्यवलय की दीवार में जाली हो ऐसे घर द्वार अगर उत्तर दिशा में हो तो यह 'प्रतापवर्धन' घर है। इस घर का द्वार अगर दिशा में हो तो यह 'दिव्य', दक्षिण में हो तो 'बहुदुःख' और पश्चिम में हो तो 'कंठछे घर कहलाता है।
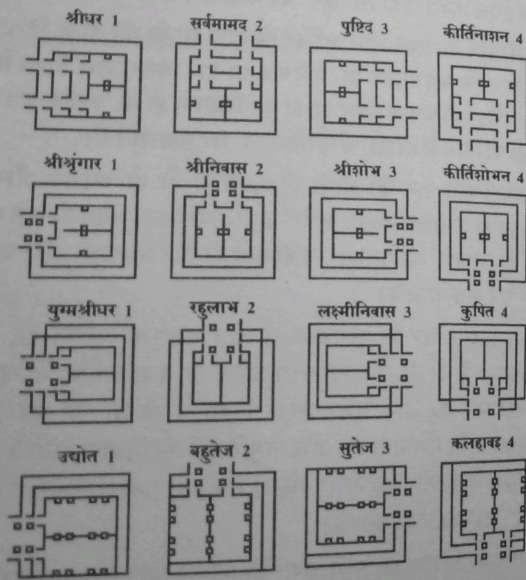
प्रतापवर्द्धन घर में अगर षड्दारु है तो यह 'जंगम' नामक घर है। ऐसा घर यश कीर्ति दाता है। इस घर का मुख अगर पूर्व में हो तो यह 'सिंहनाद', दक्षिण में हो 'हस्तिज' और पश्चिम में हो तो 'कंटक' घर कहलाता है। इस प्रकार शांतनादि सोल घर उत्तराभिमुख घर हैं।
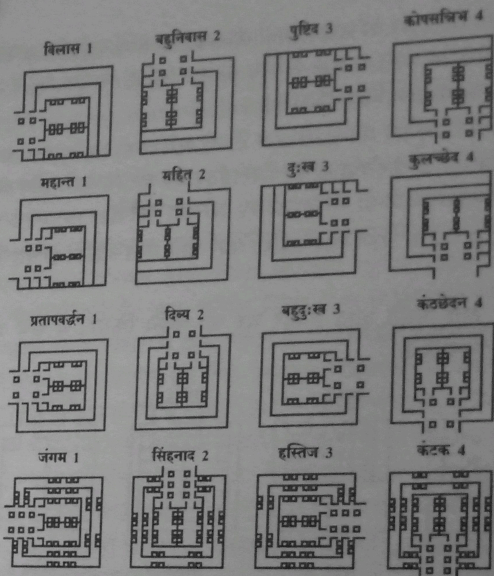
यहाँ जो शांतनादि सोलह प्रकार के घर कहे इनके प्रत्येक के पूर्व, दक्षिण और चेम दिशा में द्वारवाले घर करने से तीन तीन और भेद होते हैं। इस प्रकार इन सब के चार भेद होते हैं जो कुल मिलाकर चौसठ भेद बनते हैं।

ा के भेद द्वारा द्वार की स्पष्टता

शांतनु घर का द्वार उत्तर दिशा में, शांतद घर का द्वार पूर्व में, वर्द्धमान घर का द्वार ण में तथा कुर्कुट घर का द्वार पश्चिम दिशा में है। इसी प्रकार दूसरे भी चार चार के मुख समझ लेने चाहिए।

आदि आठ घरों का स्वरुप

जिस द्विशाल घर के अग्रभाग में तीन अलिंद हो तथा बांई एवं दाहिनी ओर स्तंभ त एक एक शाला हो वह 'सूर्यघर' कहलायेगा।

जिस द्विशाल घर के अग्रभाग में चार अलिंद हो तथा दाहिनी एवं बांइ तरफ एक शाला हो यह 'वासव' घर है। ऐसे घर में युगांत स्थिरता होती है।

जिस द्विशाल घर के आगे के भाग में तीन अलिंद तथा पीछे दो अलिंद और दाई बांई ओर एक एक अलिंद हो वह 'वीर्य' घर है। यह चारों वर्णों के लिये हितकारक

जेस द्विशाल घर के पीछे दो, अग्रभाग में दो और दाहिनी बाजु पर एक अलिंद हो वह ल' घर है। ऐसा घर दुर्भिक्ष आदि दंड निश्चित करनेवाला है।

दो शालावाले जिस घर के अग्र भाग में तीन अलिंद तथा दाहिनी एवं बांई ओर दो अलिंद और पीछे के भाग में एक अलिंद हो वह 'बुद्धि' नामक घर है। ऐसा सद्बुद्धि की वृद्धि करनेवाला सिद्ध होता है।

दो शालावाले जिस घर की चारों ओर दो दो अलिंद हो वह 'सुव्रत' घर है। घर सर्व प्रकार की सिद्धि करनेवाला है। जिस द्विशाल घर के आगे तीन अलिंद बाकी की तीनों दिशाओं में दो दो अलिंद हो वह 'प्रासाद' घर है।

जिस द्विशाल घर के आगे चार अलिंद और पीछे तीन अलिंद हो वह 'द्विवेध' है।

इस प्रकार सूर्य आदि आठ प्रकार घर का वर्णन किया। ये सब अपने नामानुसार फल देनेवाले हैं।
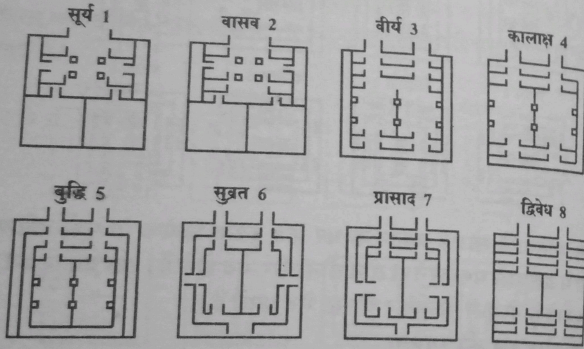
विमलादि, सुंदरादि, हंसादि, अलंकितादि, प्रभवादि, प्रमोदादि, श्रीभ... चूडामणि और कलशादि इन सब आदित्यादि घरों की दिशा और अलिंद के भेद... सोलह सोलह प्रकार के घर बनते हैं। त्रैलोक्य सुंदर आदि चोसठ प्रकार के घर राज... के लिये हैं। इस काल में गोल घर बनाने का चलन नहीं है, किन्तु राजाओं के लिये... नहीं है।

घर के उदय का मान समरांगण में कहा है

घर का जो विस्तार हो उसके सोलहवें भाग में चार हाथ जोड़ने से जो संख्या हो उतने नाप का घर के पहले तले का उदय करना अच्छा है। अथवा घर का उदय... हाथ हो तो ज्येष्ठ मान का उदय, छे हाथ हो तो मध्यम उदय तथा पाँच हाथ हो तो क... मान का उदय समझना चाहिए।

...र में किस किस दिशा में किस का स्थान बनाया जाये

घर की पूर्व दिशा में सिंहद्वार (मुख्य द्वार) रखना चाहिए। अग्निकोण में रसोईघर, ...क्षिण दिशा में शयनगृह, नैऋत्य में शौचालय, पश्चिम में भोजनशाला, वायु कोण में ...ब प्रकार के आयुधों का स्थान, उत्तर में धन का स्थान और ईशान कोण में पूजागृह ...नाना चाहिए। जिस दिशा में घर का मुख्य द्वार हो उसे पूर्व दिशा मान कर इस प्रकार ...थान निश्चित करना चाहिए।

पूर्व दिशा का द्वार 'विजय द्वार' है, दक्षिण का द्वार 'यम' नाम का द्वार है, पश्चिम ...ा द्वार 'मगर द्वार' है तथा उत्तर दिशा का द्वार 'कुबेर' द्वार है। ये सब अपने ...ामानुसार फल देनेवाले हैं। अतः दक्षिण दिशा में कभी भी द्वार रखना न चाहिए। ...किसी कारणवश अगर दक्षिण में द्वार रखना हो तो मध्य में रखने के बजाय बतलाये ...ये भाग में रखना सुखदायक है। जैसे कि चारों दिशाओं में आठ आठ भाग की ...कल्पना करें। पूर्व के आठ भागों में से चौथे अथवा तीसरे भाग में, दक्षिण के आठ भागों ...में से दूसरे अथवा छठे भाग में, पश्चिम के आठ भागों में से पाँचवे अथवा तीसरे भाग में ...और उत्तर के आठ भागों में से पाँचवे अथवा तीसरे भाग में द्वार रखना अच्छा है।

द्वार में से घर में प्रवेश करने के लिये सृष्टिमार्ग से अर्थात् दाहिनी ओर से प्रवेश हो ...स प्रकार सीढ़ियाँ बनानी चाहिए। * पदस्थान (सीढ़ियाँ), जल कुंभ, रसोईघर और ...आसन आदि सुरमुख करना चाहिए।

जिस प्रकार गाड़ी का आगे का भाग संकरा और पीछे का भाग विशाल होता है ...सी प्रकार घर द्वार के पास संकरा और पीछे विशाल बनाना चाहिए। दुकान बाघ के ...ख की तरह अग्रभाग में विशाल बनानी चाहिए। घर दरवाजे के पीछे ऊँचा बनाना ...चाहिए और दुकान अग्रभाग में ऊँची तथा मध्य में समान होनी चाहिए।

...ार का उदय और विस्तार

राजवल्लभ में यह इस प्रकार बताया गया है :- घर की चौडाई जितने हाथ की ...उतने अंगुल में साठ अंगुल जोड़ने से जो संख्या मिले उतनी ही द्वार की ऊँचाई रखी ...जाय तो वह मध्यम मान, पचास अंगुल मिलाकर उतनी ऊँचाई रखी जाय तो वह ...कनिष्ठ मान और सत्तर अंगुल मिलाकर उतनी ऊँचाई रखी जाय तो वह ज्येष्ठमान ...समझना चाहिए।

द्वार की ऊँचाई जितने अंगुल हो उसके अर्ध भाग में ऊँचाई का सोलहवाँ भाग ...जोड़कर द्वार का विस्तार किया जाय तो वह उत्तम है। द्वार की ऊँचाई के तीन भाग ...करके उसमें से एक भाग कम कर के शेष दो भाग के बराबर विस्तार किया जाय यह ...मध्यम है और द्वार की ऊँचाई के अर्द्ध भाग के बराबर विस्तार किया जाय तो यह ...कनिष्ठ है।

* उत्तरार्ध विचारणीय है।

द्वार के उदय का दूसरा मत

घर की ऊँचाई के तीन भाग कर के, उसमें से एक भाग कम करें। दो भाग ऊँचाई के बराबर द्वार की ऊँचाई रखना और ऊँचाई से आधी चौड़ाई रखना यह दू प्रकार है।

गृह प्रवेश का शुभाशुभ प्रकार

''समरांगण'' में बताया गया है : घर में प्रवेश करने के लिये प्रथम उत्संग नाम प्रवेश, दूसरा हीनबाहु अर्थात् सव्य नाम का प्रवेश, तीसरा पूर्णबाहु अर्थात् अवस नाम का प्रवेश और चौथा 'प्रत्यक्षाय' अर्थात् पृष्ठभंग नाम का प्रवेश - ये चार प्रकार प्रवेश माने जाते हैं। इनका शुभाशुभ लक्षण नीचे समझाया गया है :

मुख्य घर का द्वार तथा प्रथम प्रवेश द्वार अर्थात् (दरवाज़ा) देहली का द्वार एक दिशा में हो उसे 'उत्संग' नाम का प्रवेश कहते हैं। इस प्रकार का प्रवेश सौभाग्यकार संतानवृद्धिकारक, धनधान्य देनेवाला और विजय करानेवाला है।

जिस मुख्य घर का द्वार प्रवेश करते समय बांई ओर हो अर्थात् प्रथम देह (दरवाज़ा) द्वार में प्रवेश करने के बाद बांई ओर मुड़कर अगर घर में प्रवेश होता हो, यह हीनबाहु प्रवेश है। इस प्रकार के प्रवेश को वास्तुशास्त्र के विद्वान निदित कहते इस प्रकार के प्रवेशवाले घर में रहनेवाले मनुष्य कम धनसंपत्तिवाले, कम मित्रवा स्त्री के आधीन रहनेवाले और अनेक प्रकार की व्याधियों से पीडित होते हैं।

प्रथम प्रवेश करते समय मुख्य घर का द्वार दाहिनी ओर हो अर्थात् प्रथम देहली दरवाज़े के द्वार में प्रवेश करने के बाद दाहिनी ओर मुड़ कर मुख्य घर में प्रवेश होता उसे 'पूर्णबाहु' प्रवेश कहते हैं। ऐसे प्रवेशवाले घर में रहनेवाले मनुष्य को पुत्र, पौं धन-धान्य और सुख की निरंतर प्राप्ति होती है।

मुख्य घर के पृष्ठभाग में घूम कर मुख्य घर में अगर प्रवेश होता हो तो 'प्रत्यक्षाय' अर्थात् 'पृष्ठभंग' प्रवेश कहलायेगा। ऐसे प्रवेशवाला घर भी 'हीनब प्रवेशवाले घर की तरह निंदनीय है।

घर की ऊँचाई का फल

पूर्व दिशा में अगर घर ऊँचा हो तो लक्ष्मी का विनाश होता है। दक्षिण दिश ऊँचा हो तो घर धनसंपत्ति से पूर्ण रहता है। अगर घर पश्चिम दिशा में ऊँचा हो धनधान्य की वृद्धि करनेवाला होता है और अगर घर उत्तर दिशा में ऊँचा हो वसतिरहित उज्जड़ रहता है। (अतः दक्षिण और पश्चिम दिशाओं में घर ऊँचा हो पूर्व और उत्तर में घर नीचा रहना चाहिये। - सं)

घर के उदय का प्रमाण ''राजवल्लभ'' में इस प्रकार कहा है :-

घर का विस्तार जितना हो उसके सोलहवें भाग में चार हाथ जोड़कर उतना घर का उदय किया जाय तो यह ज्येष्ठमान का उदय होगा, साड़े तीन हाथ बढ़ाकर घर का उदय किया जाय तो मध्यममान का उदय होगा और तीन हाथ बढ़ा कर उदय किया जाय तो यह कनिष्ठ मान का उदय होगा। ये तीनों प्रकार के उदय घर के भूमितल से लेकर पाटड़े के शीर्ष तक का गिना जाता है। इन प्रत्येक उदय के दूसरे तीन तीन भेद से बारह प्रकार के उदय माने जाते हैं। इनमें से ग्यारह प्रकार के उदय गिने जाते हैं, जैसे ज्येष्ठमान के उदय के चार हाथ के 16 अंगुल में अनुक्रम से 20, 18 और 16 अंगुल मिलाये जाय तो ज्येष्ठ उदय के भेद होंगे जो इस प्रकार है :-

96 + 20 = 116 अंगुल का ज्येष्ठज्येष्ठ उदय, 96 + 18 = 114 अंगुल का ज्येष्ठमध्यम उदय तथा 96 + 16 = 112 अंगुल का ज्येष्ठ कनिष्ठ उदय। मध्यम मान के उदय के साड़े तीन हाथ के 84 अंगुल में अनुक्रम से 27, 21 और 15 अंगुल मिलाने से मध्यम उदय के तीन भेद होते हैं जो इस प्रकार हैं - 84 + 27 = 111 अंगुल का मध्यम ज्येष्ठ उदय, 84 + 21 = 105 अंगुल का मध्यममध्यम उदय तथा 84 + 15 = 99 अंगुल का मध्यम कनिष्ठ उदय। कनिष्ठ मान के उदय के तीन हाथ के 72 अंगुल में अनुक्रम से 27, 21 और 15 अंगुल जोड़ने से कनिष्ठ उदय के तीन भेद होंगे जो इस प्रकार हैं - 72 + 27 = 99 अंगुल का कनिष्ठ ज्येष्ठ उदय, 72 + 21 = 93 अंगुल का कनिष्ठ मध्यम उदय तथा 72 + 15 = 87 अंगुल का कनिष्ठ कनिष्ठ उदय। इस तरह 12 प्रकार के उदय होते हैं। लेकिन इसमें मध्यम कनिष्ठ तथा कनिष्ठ ज्येष्ठ ये दोनों उदय 99 अंगुल के होने के कारण दोनों को एक गिनकर ग्रन्थकार ने ग्यारह भेद बतलाये हैं।

* विशेष स्पष्टता के लिये घर का उदयचक्र *

उत्तम				मध्यम				कनिष्ठ				मूलभेद 3
उ	उ.उ.	उ.म.	उ.क.	म	म.उ.	म.म.	म.क.	क	क.उ.	क.म.	क.क	पेटा भेद 12
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	
96	96	96	96	84	84	84	84	72	72	72	72	
	20	18	16		27	21	15		27	21	15	
96	116	114	112	84	111	105	99	72	99	93	87	अंगुल संख्या

ये बारह प्रकार के उदय घर के विस्तार के सोलहवें भाग में मिला कर घर का उदय किया जाता है। ''बृहत् संहिता'' में भी कहा है कि - घर के विस्तार सोलहवें भाग में

हाथ बढ़ा कर उतना घर का उदय किया जाना चाहिए। किंतु दो तीन मंज़िल का घ
तो पहली मंज़िल (तल्ले) के उदय से दूसरी मंज़िल का उदय बारहवें भाग जितना
करना चाहिए और तीसरी मंज़िल का उदय दूसरी मंज़िल के उदय से बारहवें भा
बराबर कम रखना चाहिए। इस प्रकार नीचे की मंज़िल के उदय से ऊपर की मंज़ि
उदय बारहवें भाग के बराबर कम रखना चाहिए।

''समरांगण'' में भी कहा है : घर का उदय सात हाथ हो तो ज्येष्ठ उदय
जायेगा, छः हाथ हो तो मध्यम उदय तथा पांच हाथ हो तो कनिष्ठ उदय सम
चाहिए। दीवार का प्रमाण ''बृहत् संहिता'' में बताया गया है वह इस प्रकार है :

घर का विस्तार जितना हो उसके सोलहवें भाग के बराबर मोटी दीवार ब
चाहिए। किंतु पक्की ईंट, लकड़ी अथवा पाषाण की दीवार अगर बनानी हो तो अ
इच्छानुसार मोटी दीवार बनाई जा सकती है। अर्थात् जहाँ मिट्टी की दीवार बना
वहीं यह नियम लागू होता है, ईंट या लकड़ी का दीवार हो तो यह नियम लागू क
आवश्यक नहीं है।

घर का आरंभ कहाँ से करें

सर्व प्रकार से भूमि के दोषों को शुद्ध करके घर की मुख्य शाला से कार्य
आरंभ किया जाना चाहिए। इसके बाद दूसरे स्थानों का निर्माणकार्य किया
चाहिए। किसी स्थान में वेध आदि दोष न आये इस प्रकार से कार्य करें, वेध स
वर्जनीय है।

सात प्रकार के वेध

तल वेध, कोण वेध, तालु वेध, कपाल वेध, स्तंभ वेध, तुला वेध और द्वार वे
ये सात प्रकार के वेध हैं।

घर की भूमि समविषम - ऊबड़खाबड़ हो, द्वार के सामने कुंभी (घाणी, अरह
कोल्हू इ.) हो, दूसरों के घर की पानी की नाली या रास्ता हो तो तलवेध समझें और
के कोण ठीक न हो तो इसे कोणवेध समझें।

एक ही खंड में तुला (पाटड़े) विषम (ऊँचे - नीचे) हो तो यह तालुवेध है। ह
उतरांग में मध्यभाग में तुला आये तो शिरवेध समझें।

घर के मध्यभाग में एक स्तंभ हो अथवा अग्नि या जल का स्थान हो तो इस
हृदयशल्य समझें, इसे स्तंभवेध कहते हैं।

घर की नीचे की तथा ऊपर की मंज़िल के न्यून या अधिक हो तो तु
समझना चाहिए। परंतु पाटडों की संख्या समान हो तो दोष नहीं है।

घर के दरवाज़े के सामने कोई वृक्ष, कुंआ, स्तम्भ, कोना या खीला हो तो यह
वेध है। परंतु घर की ऊँचाई से दुगुनी जमीन छोड़कर उपरोक्त कोई भी वेध हो तो
दोष नहीं है, ऐसा पंडितजन कहते हैं।

वेध का परिहार ''आचार दिनकर'' में इस प्रकार बताया गया है- घर की ऊँचाई
दुगुनी और मंदिर की ऊँचाई से चारगुनी भूमि को छोड़कर इस के वेध आदि आगे
ई हो तो भी इसका कोई दोष नहीं लगता है ऐसा विश्वकर्मा का मत है।

का फल

तल वेध से कुष्ठरोग, कोण वेध से उच्चाटन, तालु वेध से भय, स्तंभ वेध से कुल
विनाश, कपाल वेध से और तुला वेध से धन का नाश और क्लेश होते हैं। इस
र वेध का फल जानकर शुद्ध घर बनाना चाहिए।

''वाराही संहिता'' में द्वार वेध के विषय में कहा गया है :

औरों के घर में जाने का रास्ता अगर अपने द्वार में से जाता हो तो मार्गवेध कहा
येगा। यह विनाशकारक है। वृक्ष का वेध हो तो शोक प्राप्त होती है। पानी के नाले का
हो तो धन का व्यय होता है, कुएँ का वेध हो तो अपस्मार (वायु) का रोग होता है।
, सूर्य आदि देवताओं का वेध हो तो स्त्री के लिये कष्टदायक होता है। ब्रह्मा के
मने द्वार हो तो कुल का नाशकारक होता है।

एक वेध से कलह, दो वेध से घर की हानि, तीन वेध से घर में भूत का निवास,
र वेध से घर का क्षय और पाँच वेध से महामारी (प्लेग) होता है।

तु पुरुष चक्र

घर की भूमितल का एक सौ आठ भाग करके उसमें एक मूर्ति के आकार की
तुपुरुष की आकृति की कल्पना करें। इस वास्तु पुरुष का मस्तक, हृदय, नाभि
शिखा जहाँ हो वहाँ स्तंभ नहीं रखना चाहिए।

तु पुरुष के अंग विभाग

ईशान कोण में वास्तुनर का मस्तक है उस पर ईश देव की स्थापना करें, दोनों
नों पर क्रम से पर्जन्य और दिति देव को, गले पर आप देव को, दोनों कंधों पर क्रम से
और अदिति देवों को, दोनों स्तन पर अर्यमा और भूधर (पृथ्वी घर) देवों को, हृदय
आपवत्स को, दाहिनी भुजा पर इन्द्रादि (इन्द्र, सूर्य, सत्य, भृश और आकाश) पाँच
को, बायीं भुजा पर नाग आदि (नाग, मुख्य, भल्लाट, कुबेर और शैली) देवों को,
ने हाथ पर सावित्र और सविता देवों को, बायें हाथ पर रुद्र और रुद्रवास देवों को,

जंघा पर क्रम से मृत्यु और मैत्र देवों को, नाभि के पृष्ठ भाग पर *ब्रह्मादेव को, गु
स्थान पर इन्द्र और जय देव को, दोनों घुटनों पर अग्नि और रोगदेव को दाहिने
नली पर पूषादि सात (पूषा, वितथ, गृहक्षत, यम, गंधर्व, भृंग और मृग) देवों क
पैर की नली पर नंदी आदि (नंदी, सुग्रीव, पुष्पदंत, परुण, असुर, शेष औ
यक्ष्मा) सात देवों को और पैरों के तलुए पर पितृदेव की स्थापना करें।

वास्तु पुरुष चक्र –
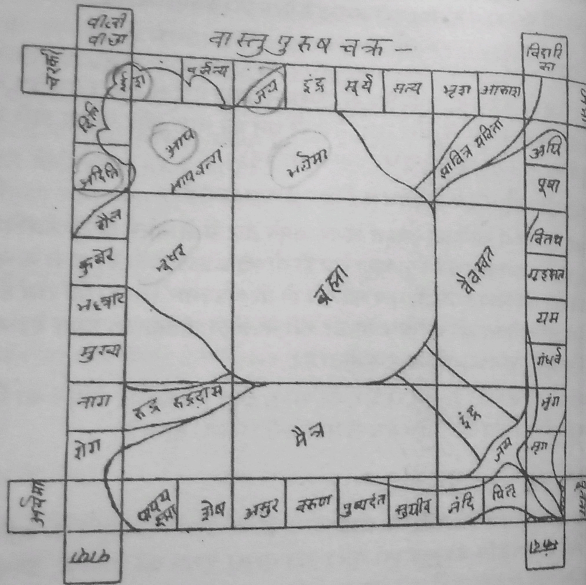
वास्तुपद के 45 देवों के नाम और स्थान

ईशान कोण में ईश को, पूर्व दिशा के कोष्टक में क्रम से पर्जन्य, जय, इन्द्र
सत्य, भश और आकाश इन सात देवों को, अग्निकोण में अग्निदेव को, दक्षिण दि
कोष्टक में अनुक्रम से पूषा, वितथ, गृहक्षत, यम, गंधर्व भृंगराज और मृग इन स
को, नैऋत्य कोण में पितृदेव को, पश्चिम दिशा के कोष्टक में क्रम से नंदी,

*एक सौ आठ भाग की कल्पना की गई है उसमें एक सौ भाग वास्तुमंडल के तथा आठ भाग वास्तु
बाहरी कोण में, चरकी आदि राक्षसियों का समझें ऐसा ''प्रासाद मंडल'' में कहा
*नाभि का पृष्ठभाग कहने का मतलब यह है कि वास्तुपुरुष की आकृति उलटे सोये हुए पुरुष के आकार

श्वेताम्बर जिनप्रतिमा

Specimen of a Swetamber Jina Pratimaji

दो खड्गासनस्थ तथा दो पद्मासनस्थ जिनप्रतिमाओं सहित भामंडलयुक्त, शास्त्रोक्त-परिकरयुक्त, जैन वास्तुशिल्प आधारित श्वेताम्बर जिनप्रतिमा
श्री आबूजी जिनालय, माउंट आबू, राजस्थान

...amber Jina pratimaji with two seated and two standing Jina Pratimas alongside with Bhamandal and traditional concept of Parikar at Shri Abuji Jinalaya, Mt. Abu, Rajasthan

श्वेताम्बर जिनप्रतिमा
Specimen of a Swetamber Jina Pratimaji

भामंडलयुक्त, नूतन-परिकर सहित जैन वास्तुशिल्प आधारित श्वेताम्बर जिन
श्री धर्मनाथ जिनालय, जयनगर, बेंगलोर

Swetamber Jina pratimaji with Bhamandal and modern concept of Pa
at Shri Dharmanath Jinalaya, Jayanagar, Bangalore

दिगम्बर जिनप्रतिमा
Specimen of a Digamber Jina Pratimaji

आदिनाथपुरम, रानीला, हरियाणा में भगवान आदिनाथ की १४०० वर्ष प्राचीन
परिकर सहित जैन वास्तुशिल्प आधारित दिगम्बर जिनप्रतिमा

1400 year old Digamber Jina pratimaji of Bhagawan Adinath
with traditional vastu-based Parikar
at Adinathapuram, Ranila, Haryana

Pyramidal Shikhar-band Temple of Taranga, Gujarat
(courtesy - Jaina Tirtha - Shraddha evam Kala)
श्री अजितनाथ जिनालय, तारंगाजी तीर्थ, गुजरात
(सौजन्य - जैन तीर्थ - श्रद्धा एवं कला)

Side elevation of a perfect Jain Temple as per Jain Vastu Shilpa
(courtesy - Vastusara Prakarana)
संपूर्ण जैन वास्तुशिल्प आधारित जिनालय का रेखाचित्र
(सौजन्य - वास्तुसार प्रकरण)

गोम्मटेश बाहुबली, श्रवणबेलगोला, कर्नाटक

संवत्सर सदियाँ बीतीं, शाम-सुबह कई रातें बीतीं
भी प्रशांत ज्ञाता-दृष्टा बनकर, अविराम खड़े हैं बाहुबली। - अनंतयात्री

मे सासओ अप्पा, नाण दंसण संजुओ।
मे बाहिरा भावा, सव्वे संजोग लक्खणा।। - समयसार / समणसुत्तं

Marvel of Jain Vaastu Shilpa Bahubali - Sravanabelagola

"The detached serenity of the Belgol image is a triumph; not only it attracts the mind but entraps our heart. . . At such a critical hour in the history of mankind, I can only pray that Bahubali's life and his image that stand for all that is true, beneficial and beautiful, might inspire in us permanent ethical and spiritual value and lead us on from darkness to light".

- Dr. A. N. Upadhye
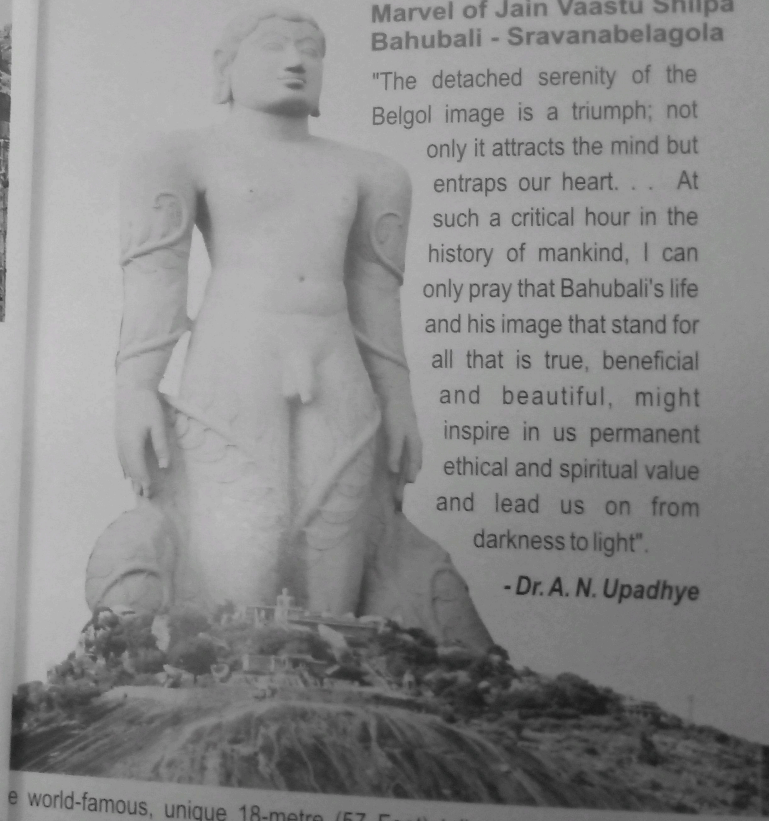
e world-famous, unique 18-metre (57 Feet) tall, monolithic carving of agawan Bahubali atop the Vindhyagiri at Sravanabelagola in Karnataka, is example of perfect Jain Vastushilpa. The idol faces North on the hill-top ile the pond at the foothill conforms to the principles of Vastu very well.

Pyramidal roof of unique Jain Temple at Moodabidri, Karnataka.

Very similar architecture seen at Pashupatinath Temple, Kathmandu, Nepal

The enduring form of Pyramids . . . oldest specimens in Egypt and more recent version at Paris, France
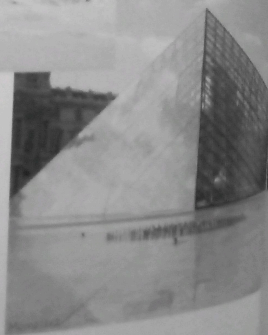
वास्तु - पिरामिड आकारित ध्यानस्थान
Pyramid-shaped Meditation Centres
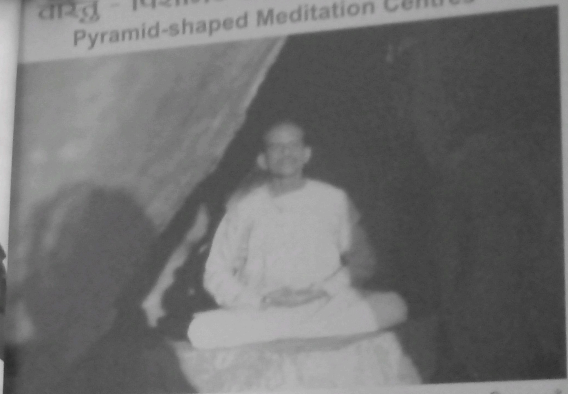
प्राचीन और प्राकृतिक - वैश्विक-ऊर्जा संग्राहक पिरामिड आकार की गुफाएँ
रत्नकूट, हम्पी, कर्नाटक

Ancient and Natural - Pyramid-shaped caves absorbing Cosmic Energy at Ratnakoot, Hampi, Karnataka
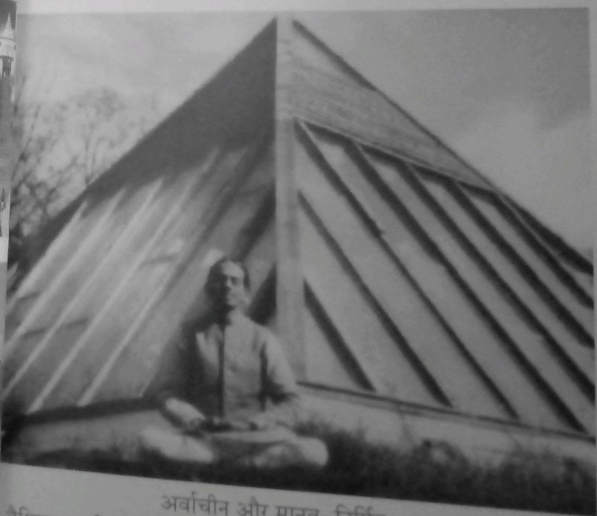
अर्वाचीन और मानव-निर्मित -
वैश्विक-ऊर्जा संग्राहक पिरामिड आकार का ध्यान केन्द्र, बॉस्टन, यू.एस.ए.

Modern and man-made - Pyramid-shaped Meditation Centre absorbing Cosmic Energy at Boston, USA

पंच महाभूत तत्व

The Five Elements of Nature

शुद्ध आत्मस्वरूप आधारित
पंच परमेष्ठी से संबंधित पंच महाभूत तत्व।
जैन ध्वज में भी इन्हीं तत्वों को दर्शाया गया है।
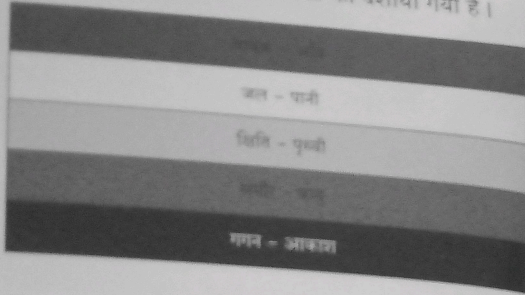
The Five Elements of Nature correlating with Pancha Paramaeshthi and based on the concept of Purity of Soul.
The Jain Flag also adopts these concepts.
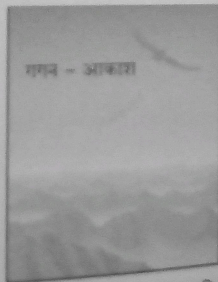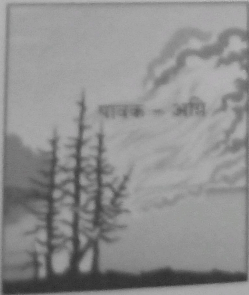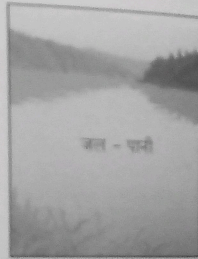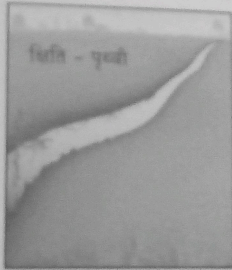
क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा, पंच रचित यह मनुज सरीरा।
संत तुलसीदास कृत रामचरितमानस

पंच महाभूत विनियोग - संतुलन
प्रकृति-निसर्ग के पाँच तत्व आत्मा के निवास, मनुष्य शरीर में भी
और मनुष्य के निवास, गृह के वास्तु में भी।

...दंत, वरुण, असुर, शेष और पापयक्ष्मा इन सात देवों को, वायुकोण में रोगदेव को, ...र दिशा के कोष्टक में अनुक्रम से नाग, मुख्य, भल्लाट, कुबेर, शैल, अदिति और ...ते इन सात देवों की स्थापना करें। इस प्रकार ऊपर के कोष्टक में 32 (बत्तीस) देवों ...पूजन करें।

मध्य के कोष्ठक में 13 (तेरह) देवों का पूजन करना है जो इस प्रकार है : ऊपर के ...ष्ठकों के नीचे पूर्व दिशा के कोष्ठक में अर्यमा, दक्षिण दिशा के कोष्ठक में विवस्वान, ...श्चिम दिशा के कोष्ठक में मैत्र और उत्तर दिशा के कोष्ठक में पृथ्वीधर देव की स्थापना ...एके पूजा करनी चाहिए और सभी कोष्ठकों के बीच में ब्रह्मा की पूजा करनी चाहिए।

ऊपर के कोण के कोष्ठक के नीचे ईशान कोण में आप और आप वत्स को, ...ग्निकोण में सावित्र और सविता को, नैऋत्य कोण में इन्द्र और जय को, वायु कोण में ...द्र और रुद्रदास की स्थापना करके पूजना चाहिए।

वास्तुमंडल के बाहर ईशान कोण में चरकी, अग्निकोण में विदारिका, नैऋत्य ...ण में पूतना और वायुकोण में पापा इन चार राक्षसियों की पूजा करना।

''प्रासाद मंडन'' में वास्तुमंडल के बाहर कोण में आठ देव बताये हैं : ईशान कोण ...बाहर उत्तर में चरकी और पूर्व में पीलीपीछा, अग्निकोण के बाहर पूर्व में विदारिका ...र दक्षिण में जम्भा, नैऋत्य कोण के बाहर दक्षिण में पूतना और पश्चिम में स्कंदा, ...युकोण के बाहर पश्चिम में पापा और उत्तर में अर्यमा की पूजा की जानी चाहिए।

...नसा वास्तु किस स्थान ...पूजना चाहिए

...ग्राम, राजमहल और ...र में चौसठ पद का वास्तु, ...र्व जाति के घरों के लिये ...क्यासी पद का वास्तु, ...र्णोद्धार में उनचास पद का ...स्तु, सर्वजाति के प्रासाद ...र मंडप के लिये सौ पद का ...स्तु, कुआँ, बाव, तालाब ...र वन में एक सौ छियानबे ...द का वास्तु पूजा जाना ...चाहिए।

✻ 64 चौसठ पद का वास्तुचक्र ✻

चरकी — विदारिका — पापा — पूतना

दि	प	ज	इ	सू	स	भृ	आ / अं
अ	आपवत्स	आप			सावित्र		पू
शे			अर्यमा			सविता	वि
कु							मृ
भ	पृथ्वीधर		ब्रह्मा		विवस्वान		घ
मु	रुद्र					इन्द्र	ग
ना		रुद्रदास	मैत्रगण		जय		भृं
रो / पा	रो	अ	व	पु	सु	नं	पि / मृ

चौसठ पद के वास्तु का स्वरूप :-

चौसठ पद के वास्तु में ब्रह्मा चार पद के, अर्यमा आदि चार देव चार चा[illegible] के, मध्य कोण के आपवत्स आदि आठ देव दो दो पद के, ऊपर के कोण के आ[illegible] आधे आधे पद के और शेष देव एक एक पद के हैं।

इक्याशी पद के वास्तु का स्वरूप

इक्याशी पद के वास्तु में नव पद के ब्रह्मा, अर्यमादि चार देव छः छः पद के मध्यवर्ति कोण के आठ देव दो दो पद के और ऊपर के बत्तीस देव एक एक पद के हैं।

✻ 81 इक्याशी पद का वास्तुचक्र ✻

चरकी — ई प ज इं सू स भृ आ अ — दि अ शै कु भ मु ना रो — पू वि मृ य ग भृ मृ पि — पा शे अ व पु सु नं — आप, आपवत्स, अर्यमा, सावित्र, सविता, पृथ्वीधर, ब्रह्मा, विवस्वान, रुद्र, रुद्रदास, मैत्रगण, इंद्र, जय — पापा

एक सौ पद के वास्तु का स्वरूप

एक सौ पद के वास्तु में सोलह पद के ब्रह्मा, ऊपर के कोण के आठ देव, डेढ़ - डेढ़ पद के, अर्यमादि चार देव, आठ आठ पद के, मध्य कोण के आठ देव दो दो पद के और बाकी के देव एक एक पद के हैं।

✻ 100 सौ पद का वास्तुचक्र ✻

चरकी — ई प ज इं सू स भृ आ — दि अ ई कु भ मु ना से — पा शे अ ब पु मु नं वि — आप, आपवत्स, अर्यमा, सावित्र, सविता, पृथ्वीधर, ब्रह्मा, विवस्वान, रुद्र, रुद्रदास, मैत्रगण, इंद्र, जय — पापा

उनचास पद के वास्तु का स्वरूप

उनचास पद के वास्तु में चार पद में ब्रह्मा, अर्यमादि चार देव तीन तीन पद में मध्य कोण के आठ देव नव पद में, ऊपर के कोण के आठ देव आधे आधे पद में और शेष चौबीस देव बीस पद में स्थापित करें - एक पद के छः भाग कर के एक भाग छोड़कर बाकी के पाँच पदों में एक देव स्थापित करें अर्थात् बीस पद के प्रत्येक के छः छः भाग करने से एक सौ बीस भाग होंगे, उन्हें चौबीस से विभाजित करने से प्रत्येक देव के लिये पाँच पाँच भाग आयेंगे। चौसठ पद में वास्तु पुरुष की कल्पना करें। वास्तुपुरुष के संधि भाग में बुद्धिमान व्यक्ति दीवार, तुला या स्तंभ न रखें।

✻ उनचास पद का वास्तुचक्र ✻

चरकी — विदारिका — ई प ज इं सू स भृ आ अ — दि अ ई कु भ मु ना से — पू वि गृ य म भृं मृं — पा शे अ ब पु मु नं वि — आप, आपवत्स, अर्यमा, सावित्र, सविता, पृथ्वीधर, ब्रह्मा, विवस्वान, रुद्र, रुद्रदास, मैत्रगण, इंद्र, जय — पापा — पूतना

दि. वसुनंदी कृत ''प्रतिष्ठासार'' में 82 पद के वास्तुचक्र में बताया गया है : प्रथम भूमि को शुद्ध कर के वास्तुपूजा करनी चाहिए। अग्रभाग में वज्राकृतिवाली खड़ी और आड़ी दस दस रेखाएँ खींचनी चाहिए। इसके ऊपर पाँच वर्ण के चूर्ण से इक्यासी पदवाला सुंदर मंडल बनाना चाहिए। मंडल के मध्य में नव कोष्ठकों में आठ पंखुड़ी वाला कमल बनाना चाहिए। इस कमल के मध्य में परमेष्ठी अरिहंत देव का नमस्कार मंत्र पूर्वक स्थापित करके उनकी पूजा करनी चाहिए। कमल की चारों दिशाओं की चारों पंखुड़ियों में सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु को तथा कोणवाली चारों पंखुड़ियों में जया, विजया, जंयता तथा अपराजिता इन चार देवियों की स्थापना करके पूजा करनी चाहिए। कमल के ऊपर सोलह कोष्ठकों में सोलह विधा देवियों को स्थापित

करके उनकी पूजा करनी चाहिए। इसके ऊपर चौबीस कोष्ठकों में शासन देवता... स्थापित करके उनकी पूजा करनी चाहिए और उसके ऊपर बत्तीस कोष्ठकों में ... को अनुक्रम से स्थापित करके उनकी पूजा करनी चाहिए।

प्रत्येक देव को मंत्राक्षर पूर्वक गंध, पुष्प, अक्षत, दीपक, धूप, फल, नैवेद्य ... अर्पित करके उनकी पूजा करें। फिर उसी प्रकार दस दिक्पाल एवं चौबीस यक्षों ... पूजा की जानी चाहिए। जिनबिंब के ऊपर अभिषेक पूर्वक अष्टप्रकारी पूजा की ... चाहिए।

इक्यासी पद का वास्तुचक्र

वास्तु या खात आदि मुहूर्त करनेवाला पुरुष कैसा होना चाहि... "बृहत्संहिता" में बताया गया है - खात आदि वास्तु करनेवाला पुरुष अगर ... हाथ से हीन हो तो द्रव्य का नाश होता है और स्त्री दोष होता है। बांये हाथ से अ... हो तो धन-धान्य की हानी होती है। मस्तक का कोई भी अवयव अर्थात् नाक, ... आँख और मुख आदि से हीन हो तो सर्व गुणों का नाश होता है। दायें या बायें ... हीन हो तो स्त्री दोष और पुत्र की मृत्यु होती है तथा दासत्व की प्राप्ति होती है। अगर वह संपूर्ण अवयववाला हो तो घर में रहनेवालों को मान, प्रतिष्ठा और सुख की प्राप्ति होगी।

*दिगंबराचार्य कृत प्रतिष्ठा पाठों में आठ व्यंतर और आठ वाणव्यंतर के बत्तीस इन्द्रों को छोड़कर ... बत्तीस इन्द्रों की पूजा करने का अधिकार कहा गया है।

द्वार, कोने और स्तंभ आदि कैसे रखे जायें

मुख्य द्वार के समान ही दूसरे द्वार रखें अर्थात् प्रत्येक के शीर्षभाग समसूत्र में रहने चाहिए अथवा मुख्य द्वार के मध्य में आये उस प्रकार संकीर्ण बनायें। अगर मुख्य द्वार के सन्मुख न रखकर एक तरफ द्वार बनायें तो अपनी इच्छानुसार कर सकते हैं।

अंदर के मुख्य द्वार से बाहर का देहली - द्वार (दरवाज़ा) ऊँचा तथा संकीर्ण न बनाना चाहिए। दोनों के उत्तरंग (Equal) समसूत्र में रहने चाहिए। ऊँचा या संकरा हो तो यह शुभ नहीं है।

भारवट तथा पीढ़ आदि द्वार के सामने नहीं चाहिए। यदि सामने हो तो घर का स्वामी दरिद्रता तथा व्याधि से पीडित होता है।

कोने के सामने कोने, गोख के सामने गोख (गवाक्ष) तथा खीलों के सामने खीले एवं स्तंभ के बराबर सामने सारे स्तम्भ - ये सब "वेध" नहीं आये उस प्रकार बनायें।

गवाक्ष (गोख) के ऊपर खीला, द्वार के ऊपर स्तंभ, स्तंभ के ऊपर द्वार, द्वार के ऊपर दो द्वार, समान खंड और विषम स्तंभ - ये सब महा अशुभकारक हैं।

प्रासाद (राजमहल अथवा हवेली भवन) मठ (आश्रम) और देवमंदिर ये सब बिना स्तंभ के नहीं बनाने चाहिए। कोने के बीच में अवश्य स्तंभ रखना चाहिए।

स्तंभ का नाप "परिमाणमंजरी" में बताया गया है वह इस प्रकार है : घर के उदय के नौ भाग करें। इसमें एक भाग की कुंभी, छः भागके स्तंभ, आधे भाग का भरणा, आधे भाग का शर तथा एक भाग का पट्ट (पाटडा) बनायें।

कुंभी के माथे के ऊपर शिखर वाले, गोल, आठ कोनेवाले, भद्र के आकारवाले (चढ़ते - उतरते खरोच - कोनेवाले) मूर्तियों वाले एवं पल्लवयुक्त स्तंभ, सामान्य घरों में नहीं रखने चाहिए। परंतु हवेली, राजमहल या देवमंदिर में ऐसी रचना करने में दोष नहीं है।

खंड के मध्य भाग में खीले, आले या गवाक्ष (गोख) नहीं बनाने चाहिए, किंतु अंतरवटी एवं मंच रखने चाहिए। खंड में पट्ट (पाटड) समसंख्या में रखे जाने चाहिए।

जिस घर के मध्य में अथवा आंगन में त्रिकोण या पंचकोण भूमि हो उस घर में रहनेवालों को कभी भी सुख, समृद्धि की प्राप्ति नहीं हो सकती।

पश्चिम दिशा के द्वारवाले मुख्य घर में दो द्वार और एक कमरा हो ऐसे घर में निवास नहीं करना चाहिए। ऐसे घर में रहनेवाले दुःखी रहते हैं।

जिस घर के द्वार एक कमलवाले हों अथवा सर्वथा कमलरहित ही हों और की अपेक्षा ऊपर की ओर कुछ चौड़े हों, ऐसे द्वारवाले घर में लक्ष्मी वास नहीं करती

गोल कोने वाले, एक दो या तीन कोने वाले तथा दाहिनी और बांयी ओर लं ऐसे घर में कभी भी निवास नहीं करना चाहिए।

जिस घर के द्वार अपने आप बंद हो जायें तथा खुल जायें उसे अशुभ समझें के मुख्य द्वार कलश आदि के चित्रवाले हों यह बहुत ही शुभकारक है।

ऊपर जो वेध आदि दोष बताये हैं उसमें छज्जा, दीवार या रास्ते का अंतर हे वह दोषकारक नहीं है। शाला तथा कमरे की कुक्षी और पृष्ठभाग द्वार के भाग में हे यह अत्यंत दोषकारक है।

घर में चित्र का विचार

योगिनियों के नाटक, महाभारत - रामायण या राजाओं के युद्ध, ऋषि चरित्र और देवों के चरित्र आदि विषयों के चित्र घर में चित्रित नहीं करने चाहिए।

फलवाले वृक्ष, पुष्पलताएँ, सरस्वती देवी, नवनिधानुयुक्त लक्ष्मीदेवी, क वर्धापन आदि मांगलिक चिह्न तथा सुंदर स्वप्नों की माला जैसे चित्र घर में चि करना शुभ है।

पुरुष के शरीर की तरह घर का भी कोई अंग हीन अथवा अधिक हे शोभादायक नहीं होता। अतः शिल्पशास्त्र के अनुसार शुद्ध घर निर्मित करना च जिससे वह ऋद्धिकारक बनें।

घर के सामने जिनेश्वर की पीठ हो, सूर्य अथवा महादेव की दृष्टि हो और विष्ण बायीं भुजा हो तो वह अशुभ है। चंडीदेवी सर्व स्थानों में अशुभ है। ब्रह्मा की दिशाएँ अशुभ हैं। इसलिये ऐसे स्थानों में घर बनाना नहीं चाहिए। सर्वोत्तम घर सन्मुख हो ।

घर के सामने जिनेश्वर की दृष्टि अथवा दाहिनी भुजा हो तथा महादेव की अथवा बायीं भूजा हो तो कल्याणदायक है। किंतु अगर इससे उलटा हो तो अ दुःखदायक है। परंतु अगर बीच में रास्ते का अंतर हो तो दोष नहीं है।

मंदिर की ध्वजछाया आदि का फल

प्रथम और चौथे प्रहर को छोड़कर दूसरे और तीसरे प्रहर में मंदिर की ध्वजा की छाया अगर घर पर पड़ती हो तो दुःखकारक है, इसलिये इस छाया को छोड़ बनाना चाहिए। अर्थात् दूसरे और तीसरे प्रहर में मंदिर की ध्वजा आदि की छाया हो ऐसे स्थान में घर का निर्माण न करना चाहिए।

घर में समानकाष्ठ और विषमखंड एक विधि से करने चा.हए, पूर्वउत्तर दिशा में (ईशान कोण में) पल्लव तथा दक्षिण पश्चिम दिशा में (नैऋत्य कोण में) मूल बनाने चाहिए।

मुख्य घर में सभी भारवट समसूत्र (समान) में रखने चाहिए। उसी प्रकार कमरे में, गुंजारी में तथा अलिंद में पीढ़ भी समसूत्र में रखने चाहिए।

हल, कोल्हु, गाड़ी, रहँट, कांटेवाले वृक्ष, पाँच प्रकार के उदुंबर (पीपल, पलाश, उंबर, वट तथा कठुंबर) तथा जिन वृक्षों को काटने से दूध निकलता है ऐसे वृक्षों की लकड़ी का उपयोग घर बनाने में नहीं करना चाहिए।

बीजोरा, केला, अनार, नीथु, आक, इमली, बबूल, बेरी तथा पीले फूलवाले वृक्ष इत्यादि वृक्षों की लकड़ी घर के उपयोग में लेनी नहीं चाहिए तथा इन वृक्षों को घर के सामने (आंगन में) लगाना भी नहीं चाहिए। उपर्युक्त वृक्षों के मूल (जड़े) अगर घर के समीप हों अथवा घर में प्रवेश करते हो तथा जिस घर के ऊपर इन वृक्षों की छाया पड़ती हो उस कुल का नाश होता है।

जो वृक्ष अपने आप सूख गया हो, टूट गया हो या जल गया हो, जो स्मशान के निकट हो, जिस पर पंछियों के घोंसले हों, जिसमें से दूध निकलता हो, जो लंबा हो (खजूर या ताड़) नीम और बहड़ा जैसे वृक्षों की लकड़ी घर बनाने के लिये काटनी नहीं चाहिए।

''वाराही संहिता'' में कहा है - घर के निकट अगर कांटेवाले वृक्ष हों तो शत्रु का भय रहता है, दूधवाले वृक्ष हो तो लक्ष्मी का नाश होता है। फलवाले वृक्ष हों तो संतान का नाश होता है। इन वृक्षों की लकड़ी भी घर के निर्माण कार्य में उपयोग में लेनी नहीं चाहिए। ये वृक्ष अगर घर में या घर के समीप भी हों तो उन्हें काट देना चाहिए। अगर इन्हें काटना न हो तो इनके निकट पुन्नाग (नागकेसर) अशोक, रीठा, कैसर, फणस, शमी और शाल्मली जैसे सुगन्धित पूज्य वृक्ष लगाने चाहिए जिससे उक्त वृक्षों का दोष नष्ट हो जाता है।

पीपर, वट, उदंबर तथा पीपल के वृक्ष अगर घर की दक्षिणादि दिशा में हों तो अशुभ है, उत्तरादि दिशा में हों तो शुभ है अर्थात् दक्षिण में पीपर, पश्चिम में वट वृक्ष उत्तर में उदंबर और पूर्व में पीपल का वृक्ष हो तो अशुभ समझें। एवं उत्तर में पीपर, पूर्व में वट वृक्ष, दक्षिण में उदंबर और पश्चिम में पीपल हो तो शुभ समझें।

पत्थर के स्तंभ, पीढ़े, पट्ट एवं द्वारशाख अगर साधारण घर में हो तो अशुभ हैं किंतु धर्मस्थान, देवमंदिर आदि स्थानों में हों तो शुभ हैं।

जो प्रासाद अथवा घर पत्थर के हों वहाँ लकड़ी के और लकड़ी के हों वहाँ पथ्थर के स्तंभ, भारवट आदि नहीं बनाने चाहिए। अर्थात् घर आदि पथ्थर के हों तो स्तंभ

आदि भी पथ्थर के बनाने चाहिए तथा लकड़ी के घर आदि में स्तंभ आदि लकड़ी निर्मित किये जाने चाहिए।

दूसरे वास्तु की (मकान की) लकड़ियाँ आदि चीजें न लेनी चाहिए इस विषय कहा गया है कि देवमंदिर, कुआँ बाव, स्मशान, मठ और राजमहल इत्यादि के पथ्थ ईंट अथवा लकड़ियाँ एक राई के दाने के बराबर भी अपने घर में उपयोग में नहीं ले चाहिए।

''समरांगण सूत्रधार'' में भी कहा है : दूसरों के वास्तु (मकान) के पड़े हुए पथ्थ लकड़ी आदि द्रव्य दूसरे वास्तु के उपयोग में न लेने चाहिए। अगर दूसरों के वास्तु वस्तु मंदिर में प्रयुक्त की जाय तो पूजा-प्रतिष्ठा हो नहीं सकती और अगर घर में प्रयु की जाय तो उस घर में स्वामी का वास नहीं होता।

अपने मकान में ऊपर की मंज़िल में सुंदर जाली इत्यादि रखना तो ठीक है, कि अगर दूसरों के मकान में जालियाँ हों तो अपनी जालियाँ उसके नीचे आयें उस प्रकार रखनी चाहिए। घर की नीचे की मंज़िल की पीछे की दीवार में कभी भी जाली इत्यादि रखना चाहिए ऐसा प्राचीन शास्त्रों में कहा है।

''शिल्पदीपक'' में भी कहा है कि : पीछे की दीवार में सुई के मुख के बराबर छिद्र अगर रखा जाय तो मंदिर में देव की पूजा नहीं हो सकती तथा घर में राक्षस क्री करते हैं। अर्थात् मंदिर अथवा घर में पीछे की दीवार में नीचे की मंज़िल में प्रकाश लिये खिड़कियाँ आदि हों तो अच्छा नहीं है।

नगर अथवा गाँव के ईशान कोण में घर बनाना नहीं चाहिए। यह उत्तम मनुष्यों लिये अशुभ है किंतु अंत्यज जाति के मनुष्यों के लिये वृद्धिकारक है।

शयन करने की रीत

देव, गुरु, अग्नि, गाय और धन की ओर पैर रखकर, उत्तर में मस्तक रखकर, न हो कर या गीले पैर कभी भी शयन करना नहीं चाहिए।

धूर्तजन एवं मंत्री के निकट, दूसरों की वास्तु की हुई जमीन में तथा चौक (चौरा में कभी भी घर न बनायें।

घर अथवा देवमंदिर का जीर्णोद्धार करना हो तो उसका मुख्य द्वार चलायमान करें। अर्थात् मुख्य द्वार मूलतः जिस दिशा में हो, जिस मान का और जिस स्थान पर उसी दिशा में उसी मान का और उसी स्थान पर रखना चाहिए।

''विवेक विलास'' में कहा है कि : अगर घर देवमंदिर के पास हो तो दुःख, चौ में हो तो हानि तथा धूर्त व्यक्ति या मंत्री के घर के पास हो तो पुत्र तथा धन का क्षय हो है।

गाय - बैल तथा अश्वों को बांधने का स्थान

गाय, बैल और गाड़ी को रखने का स्थान घर की दाहिनी ओर तथा अश्व का स्थान बाईं ओर घर के बाहर की भूमि में बनाई गई अश्वशाला में रखना चाहिए।

किसी कारणवश घर के लिये अधिक भूमि लेनी पड़े तो घर की बाई या दाहिनी ओर अथवा आगे के भाग में लेनी चाहिए परंतु घर के पीछे की भूमि कभी भी लेनी नहीं चाहिए ऐसा प्राचीन ज्ञानी आचार्यों का मत है।

* (गृहप्रकरण समाप्त) *
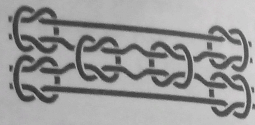
"जन जन का जैन वास्तु सार"

Essence of Jain Vaastu

भाग - 2

जिन प्रतिमा एवं जिन प्रासाद वास्तु शिल्प वास्तुशिल्प
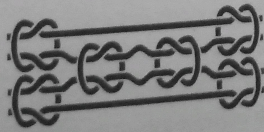
जिनवर निलय स्मृति-वन्दना

अवनितलगतानां कृत्रिमाकृत्रिमाणां
वनभवनगतानां दिव्य वैमानिकानाम्।
इह मनुजकृतानां देवराजार्चितानां
जिनवरनिलयानां भावतोऽहं स्मरामि॥

जिनवर निलयों में जिन-प्रतिमा द्वारा निजानुभूति परमात्मानुभूति

"अपने आत्मोत्कर्ष - लक्षित जैन तीर्थयात्रा के उद्देश्य से जैनों ने अपने तीर्थक्षेत्रों के लिये जिनस्थानों को चुना, वे पर्वतों की चोटियों पर या निर्जन और एकांत घाटियों में जो जनपदों और भौतिकता से ग्रसित सांसारिक जीवन की आपाधापी से भी दूर, हरे-भरे प्राकृतिक दृश्यों तथा शांत मैदानों के मध्य स्थित हैं और जो एकाग्र ध्यान और आत्मिक चिंतन में सहायक एवं उत्प्रेरक होते हैं। ऐसे स्थान के निरंतर पुनीत संसर्ग से एक अतिरिक्त निर्मलता का संचार होता है और वातावरण आध्यात्मिकता, अलौकिकता, पवित्रता और लोकोत्तर शांति से पुनर्जीवित हो उठता है। वहाँ वास्तु स्मारकों (मंदिर-देवालयों आदि) की स्थापत्य कला और सबसे अधिक मूर्तिमान तीर्थंकर प्रतिमाएँ अपनी अनंत शांति, वीतरागता और एकाग्रता से भक्त तीर्थयात्री को स्वयं 'परमात्मतत्त्व' के सन्निधान की अनुभूति करा देती है। और फूट पड़ता है यह पारमार्थिक भावातिरेक :-

'चला जा रहा तीर्थक्षेत्र में अपनाए भगवान को।
सुन्दरता की खोज में, अपनाएँ भगवान को।'

- ज्योतिप्रसाद जैन ("जैन कला एवं स्थापत्य - 1")

(जिनप्रतिमा + प्रासाद वास्तु)

जैन वास्तुकला का उद्गम और उसकी आत्मा

जिनालय - जिनप्रतिमा

उद्गम

* यात्री : भिन्नत्व लिये हुए - संसार से, सम्बन्धों से, संगों-संसगों से एवं पदा... से। सम्यग् दर्शन ज्ञान चरित्र शुद्धि-संप्राप्ति।
* तीर्थयात्रा : तीर्थ = पवित्र, पूजनीय, तारक स्थान। संसार पारगमन का साधक
* जैन तीर्थस्थान : प्रकृति मध्य में, नैसर्गिक प्रशांत वातावरण में। ध्यान साधना (एकांतपूर्ण)।
* वास्तु-स्मारकों : मंदिरों - देवालयों - जिनप्रासादों की स्थापत्यकला पूर्ण वास्... सिद्धांताधारित। अधिकांश मूर्तिमान तीर्थंकर प्रतिमाओं - जिनप्रतिमाओं... केन्द्रित। सारी जिनप्रतिमाएँ अपनी अनंत शांति, वीतरागता, आत्मलीनता... संप्रेषित कराती हुईं। भक्त तीर्थयात्री को स्वयं परमात्मतत्व के सन्निधान... अनुभूति कराने में सक्षम।
* तीर्थक्षेत्रों की यात्रा : भक्तजीवन की एक अभिलाषा। ये तीर्थस्थल, ... कलात्मक मंदिर, मूर्तियाँ आदि मुक्तात्माओं के - महापुरुषों के ... घटनास्थानों के जीवंत संस्मरण। कहीं सर्वप्रकार के धार्मिक कृत्य संपन्न।
* भारत की सांस्कृतिक धरोहर को समृद्ध करनेवालों में जैन तीर्थ अग्रणी। दे... सांस्कृतिक भंडार को कला स्थापत्य से संपन्न किया।
* जैन कला प्रधानतः धर्मोन्मुख, आत्मोन्मुख रही; विशेषात्मक दृष्टि, ध्यान... जिनमुद्राएँ एवं वैराग्य की निःसंगता की भावना भी परिलक्षित, अतः वास्तु... में शिल्पस्थापत्य कला में नीतिपरक, अध्यात्मपरक अंकन अन्य अंकनो... छाया हुआ।
* जैन मूर्तियों में जिनों, तीर्थंकरों की मूर्तियाँ, जिनप्रतिमाएँ निस्सन्देह सर्वा... सारी मूर्तियाँ प्रायः एक जैसी, एक से आकार की समचतुस्र परिमाण युक्त... कलाकार - शिल्पकार को अपनी कला - प्रतिभा के वैभिन्य के प्रद... अवसर कम मिल सका। फिर भी जिन प्रतिमाओं के वदनों, मुखाकृ...

ध्यानमय प्रशमरस, शांति-प्रशांति-समता के भाव भरने की सूक्ष्म कला को प्रदर्शित करने की चुनौती भी रही। इनमें भी श्रवणबेलगोला की बाहुबलीजी गोम्मट - प्रतिमा के समान अनेक प्रतिमायें अपने वदन पर के ध्यान-निमग्न भावों को प्रस्फुटित, अभिव्यक्त करने में अद्वितीय बन पड़ी हैं।

* ऐसे ही प्रतिमाओं के साथ इर्द-गिर्द के कलाशिल्पों की विविधता और सूक्ष्मता का अंकन देखें तो दिलवाड़ा, राणकपुर एवं अनेकानेक जैन तीर्थों की जिनप्रतिमाएँ अपने आप में अद्वितीय उदाहरण लिये विराजित (पद्मासनस्थ) या ऊर्ध्वाजित (कायोत्सर्ग ध्यानवत) रहकर सदियों से ध्यानोत्सुक यात्रियों को निमंत्रण, बुलावा देती रहीं हैं। अपना जिनसाक्षात्वत् अस्तित्व सिद्ध करती हुई वे सन्देश दे रहीं हैं कि "जिनप्रतिमा जिनसारिखी।" ऐसी प्रशमरस एवं परम प्रभावपूर्ण प्रतिमाओं को केन्द्र में रखनेवाले सारे जिनालय जैन वास्तु शिल्प कला पर निर्मित।
* ऐसे जिनालयों के शिखर भी महा प्रभावोत्पादक एवं अध्यात्म के, आत्मा के ऊर्ध्वगमन के संदेश-वाहक।
* ये सारे शिखर प्रायः ऊर्ध्वगामी नोकदार अथवा त्रिकोणाकार - पिरामिडाकार। श्री शत्रुंजय गिरिराज (इस ग्रंथ का मुखपृष्ठ), तारंगाजी और दक्षिण में कर्णाटक के मूड़बिद्रि आदि जिनलयों के शिखर विशेष दृष्टव्य।

जिनालय - जिनप्रासाद वास्तु

जिनप्रतिमा - जिनप्रासाद वास्तुशिल्प

शयन विवेक : देवगुरु प्रतिमा अर्थात् जिनमंदिर सन्मुख पैर रखकर शयन न करें। (देव, गुरु, अग्नि, गाय, धन के सन्मुख पैर रखकर, उत्तर में मस्तक रखकर, नग्न होकर एवं भीगे पैरों से कभी भी शयन न करें। "वास्तुसार।ऽऽ")

बिम्ब-प्रतिमा-मूर्ति के स्वरुप में वस्तुस्थिति

जिनमूर्ति के मस्तक, कपाल, कान और नाक के ऊपर बाहर की ओर निकला तीन छत्र (त्रि-छत्र) का विस्तार होता है। एवं चरण के आगे - नीचे - नवग्रह एवं प्रतिमा के यक्ष यक्षिणी हो तो सुखदायक हैं।

निर्दाघ पाषाण एवं ऊंचाई : "पाषाण - परीक्षा"

मूर्ति में अथवा उसके परिकर में पाषाण वर्णसंकर (=दागयुक्त) हो तो अच्छा नहीं। अतः पाषाण-परीक्षा कर मूर्ति निर्माण हेतु निर्दाघ पाषाण लायें। मूर्ति सुंदर लाभप्रदाता हो इस लिये "विषम" अंगुल (अर्थात् 1, 3, 5, 7, 9, 11, इत्यादि) ऊंचाई की बनवानी चाहिए।

पाषाण-परीक्षा (काष्ठ परीक्षा भी) करने के लिये निर्मल कांजी के साथ बिलीपत्रवृक्ष के फल की छाल घिसकर पत्थर (अथवा लकड़े) पर लेप करने से उसमें रहे हुए मंडल (दाग) स्पष्ट दिखाई देते हैं।

ये दाग भिन्न भिन्न रंगों के हो सकते हैं और तद् तदनुसार शल्यों को भीतर समाए हुए हो सकते हैं (विस्तृत वर्णन बिम्बपरीक्षा ग्रंथों में)। ऐसे दागवाले पाषाण (अथवा काष्ठ) से संतान, लक्ष्मी, प्राण, राज्यादि का विनाश होता है।

अन्य पाषाण - दोष

पाषाण (अथवा काष्ठ) में कीला, छिद्र, पोल, जीवों के जाले, संघ, मंडलाकार रेखा अथवा गारा (मिट्टी) हो तो बड़ा दोष समझें।

पाषाण (अथवा प्रतिमा के काष्ठ) में किसी भी प्रकार की रेखा (दाग) दिखाई आये और वह यदि अपनी मूल वस्तु के रंग जैसी हो तो दोष नहीं है, परंतु मूलवस्तु के रंग से अन्य वर्ण की हो तो अति दोषयुक्त समझें।

शुभ रेखाएँ

पाषाण (अथवा काष्ठ) में नंद्यावर्त्त, शेषनाग, घोड़ा, श्रीवत्स, कछुआ, शंख, स्वस्तिक, हाथी, गाय, वृषभ, इंद्र, चंद्र, सूर्य, छत्र, माला, ध्वजा, शिवलिंग, तोरण, हरिण, मंदिर, कमल, वज, गरुड़ और महादेव की जटा इत्यादि आकारवाली रेखा हो तो शुभदायक जाने। रेखा प्रतिमा के किनकिन स्थानों पर नहीं होनी चाहिये वह वसुनंदी प्रतिष्ठासार में दर्शाया है।

❊ जिन प्रतिमा ❊

प्रतिमा-पाषाण पर श्यामरंगादि रेखा

हृदय, मस्तक, कपाल, दोनों कंधे, दोनों कान, मुख, पेट, पृष्ठ भाग, दोनों हाथ और दोनों पैर इत्यादि प्रतिमा-अवयवों में श्याम आदि रंग की रेखा हो तो उस प्रतिमा का पंडितजन अवश्य त्याग करें। इन के अतिरिक्त अन्य अवयवों पर ऐसी रेखा को मध्यम समझें। और खराब चीर फाड़ (छेद) आदि दूषणों से रहित स्वच्छ, चिकनी, ठंडी ऐसे अपने वर्णवाली रेखा हो तो वह दोषपूर्ण नहीं है।

रत्नजाति एवं सुवर्ण - चांदी - ताम्र प्रतिमा

चंद्रकांत और सूर्यकांत आदि प्रत्येक रत्न जाति की प्रतिमा को सर्व शुभ गुणों से युक्त समझें।

सुवर्ण, चांदी और ताम्बा इन धातुओं की प्रतिमा श्रेष्ठ है, परंतु कांसा-सीसा-कलाइ इन धातुओं की एवं मिश्रधातु (कांसा, आदि) की प्रतिमाएँ बनवाने का निषेध है। (कुछ आचार्य पित्तल की प्रतिमा बनवाने का कहते हैं।)

काष्ठ - प्रतिमा - पाषाण प्रतिमा

चैत्यालय में काष्ठ की प्रतिमा बनवानी हो तो श्रीपर्णी, चंदन, बेलवृक्ष, कदंब, लाल चंदन, पियाल, उंबरा और कवचित् शिशम इन वृक्षों के काष्ठ प्रतिमा बनवाने के लिये उत्तम हैं और अन्य सभी वर्जित हैं। उपर्युक्त वृक्षों में जो शाखा प्रतिमा बनवाने योग्य हो, दोषों से रहित हो और उत्तम भूमि में अधिष्ठित हो उसे पसंद करके लें।

अपवित्र स्थान में उत्पन्न हुए, चीर, मसे अथवा गांठ आदि दोषयुक्त पत्थर अथवा काष्ठ को प्रतिमा बनवाने के काम में न लें। परंतु दोषरहित, मजबूत, सफेद, पीला, लाल, कृष्ण और हरे वर्ण का पत्थर, प्रतिमा के लिये लायें।

प्रतिमा का परिमाण - प्रमाण : समचतुःसंस्थान : पद्मासनस्थ

दायें घुटने से बाये कंधे तक एक, बायें घुटने से दाये कंधे तक दूसरा, एक दूसरे घुटने तक तीसरा, नीचे वस्त्र की पाटली (मध्य भाग) से ऊपर कपाल तक - इस प्रकार चारों सुत का नाप बराबर हो तो वह प्रतिमा समचोरस सं समचतुःसंस्थान युक्त कही जायेगी। पद्मास्थनस्थ प्रतिमा शुभकारक है।

** वर्तमान में पंचधातु" की प्रतिमाएँ निर्मित होकर उपयोग में ली जाती है विषय में गीतार्थ आचार्यगण एवं विद्वद्जन प्रकाश डालेंगे, यह प्रार्थना है।*

पद्मासनस्थ प्रतिमा

बैठी प्रतिमा : बायीं जंघा और पिंडी पर दायां पैर एवं दायां हाथ एवं दा और पिंडी पर बायां पैर - दायां हाथ पद्मासन।

खड़ी प्रतिमा के अंग विभाग-प्रमाण

1. कपाल, 2. नासिका, 3. मुख, 4. ग्रीवा (गरदन), 5. हृदय, 6. 7. गुह्य, 8.जंघा, 9. घुटना, 10. पिंडी एवं 11. चरण - ये ग्यारह स्थान अंग के जानें।

कपाल आदि इन ग्यारह अंग - विभागों के प्रमाण अनुक्रम से 1. चार, 2 3. चार, 4. तीन, 5. बारह, 6. ग्यारह, 7. बारह, 8. चौबीस, 9. चार, 10. और 11. चार अंगुल का जाने। अर्थात् 1. कपाल चार अंगुल, 2. नासि अंगुल, 3. मुख चार अंगुल, 4. गर्दन तीन अंगुल, 5. गर्दन से हृदय तक बारह 6. लक्ष्य से नाभि तक बारह अंगुल, 7. नाभि से गुह्य भाग तक बारह अंगुल, भाग से जंघा (जानु) तक चौबीस अंगुल, 9. घुटना चार अंगुल, 10. पिंडी घूंटो तक) चौबीस अंगुल और 11. पिंडी (घूटी) से पैर के तलवे - चरण त अंगुल - इस प्रकार खड़ी - कायोत्सर्ग मुद्रा की प्रतिमा के अंग विभाग का प्रमाण

बैठी - पद्मासनस्थ - प्रतिमा के अंग विभाग - प्रमाण-मान

1. कपाल, 2. नासिका, 3. मुख, 4. गर्दन, 5. हृदय (छाती), 6. नाभि, और 8. जानु - ये आठ अंग बैठी - पद्मासनस्थ - प्रतिमा के अंग विभाग अनुक्र

र्ता

1. कपाल	-	चार अंगुल
2. नासिका	-	पांच अंगुल
3. मुख	-	चार अंगुल
4. गर्दन	-	तीन अंगुल
5. छाती	-	बारह अंगुल
6. नाभि	-	बारह अंगुल
7. नाभि से गुह्य तक	-	बारह अंगुल और
8. जानु	-	चार अंगुल

इस प्रकार बैठी हुई - पद्मासनस्थ - प्रतिमा का मान-प्रमाण जानें।

यह श्वेताम्बर आम्नाय की जिन प्रतिमा का अंगमान प्रमाण है।

दिगम्बर जिनमूर्ति का स्वरुप दिगंबराचार्य श्री वसुनंदिकृत "प्रतिष्ठा सार" में र्शत है तदनुसार जानें।

रिकर का स्वरुप

सिंहासन (परिकर) की लंबी प्रतिमा के विस्तार से डेढ़ गुनी (1.5) करें, हासन की गादी का उदय पाव (1/4) भाग से करें। परिकर की गादी में हाथी आदि नव अथवा सात बनवाने चाहिये।

(गादी में सात रुप बनवाने हों तो उनमें चामरधारी बनाते नहीं है। उसके भाग - दह चौदह भाग के यक्ष-यक्षिणी, बारह बारह भाग के दो सिंह, बारह बारह भाग के हाथी और बीच में चक्रधरी देवी आठ भाग - इस प्रकार सात रुप बनवायें।)

परिकर की गादी में एक ओर यक्ष और दूसरी ओर यक्षिणी अर्थात् गादी पर जो र्ति बिराजमान हो उसके शासन देव (यक्ष) भगवान की दायीं (जिमणी) ओर एवं क्षिणी बायीं ओर बनवायें। और दो सिंह, दो हाथी, दो चामर धारक इंद्र एवं मध्य में क्रधरी देवी के रुप बनवायें। उसमें चौदह चौदह भाग के दोनों यक्ष और यक्षिणी, रह बारह भाग के दोनों सिंह, दस दस भाग के दोनों हाथी, तीन तीन भाग के दोनों ामरधारी इन्द्र एवं मध्य में चक्रधरादेवी छह भाग की बनवायें। इस प्रकार कुल 84 चोर्यासी) भाग सिंहासन की गादी की लंबाई जाने।

सिंहासन के मध्यभाग में जो चक्रधरी देवी है, उसे गरुड़ का वाहन (सवारी) है। चक्रधरी की चार भुजाओं में ऊपर की दोनों भुजाएँ चक्र, नीचे की जमणी (दक्षिण) जा वरदान और बायी भुजा बीहोरा युक्त है।) इस चक्रधरी देवी के नीचे एक धर्मचक्र नायें और धर्मचक्र की दोनों ओर एक एक सुंदर हरिन (हिरन) बनवायें। गादी के ध्यभाग में जिनेश्वर भगवान का चिह्न बनवायें।

सिंहासन की गादी का उदय इस प्रकार कुल अट्ठाईस भाग का जानें :- चा
की कणपीठ, दो भाग की छाजली, बारह भाग के हाथी आदि रुप, दो भाग की
और आठ भाग की अक्षरपट्टी।

प्रतिमा की गादी की ठीक आठ भाग ऊंची चामरधारी इंद्र अथवा काउसग्ग
की गादी बनवायें। उसके ऊपर एकतीस भाग की चामरधारी इंद्र की अथवा काउ
ध्यान युक्त खड़ी जिन की मूर्ति बनवायें और उसके ऊपर के भाग में तोरण
बनवायें। इस प्रकार कुल एकावन भाग के पखवाड़े का उदय जानें।

सोलह भाग थांभली (स्तम्भिका) साथ के रुप का, उसमें दो दो भाग की
थांभली और बारह भाग रुप के जानें। एवं छः भाग की वरालिका (ग्रासपट्टी)
इस प्रकार कुल बाईस भाग पखवाड़े का विस्तार जानें। पखवाड़े की चौड़ाई (
Thickness) सोलह भाग की रखें।

परिकर के छत्रवटे का स्वरुप

अर्ध छत्र के दस भाग, कमल नाल एक भाग, माला धारण करनेवाले दे
भाग, थांभली दो भाग, वांसली अथवा वीणा को धारण करनेवाले के आ
(वांसली) और वीणा को धारण करनेवाले देवों के स्थान पर जिनेश्वर भगवान की
हुई मूर्ति भी रखी जाती है। तिलक के मध्य में घूमटी, दो भाग थांभली और छह भा
मधरमुख, इस प्रकार छत्रवर के एक ओर के बयालीस भाग और दूसरी ओ
बयालीस भाग मिलकर कुल चोर्यासी भाग और दूसरी ओर के बयालीस
मिलकर कुल चोर्यासी भाग छत्रवट (डउले) के विस्तार का जानें।

छत्र का उदय चौबीस भाग, उसके ऊपर छत्रत्रय (तीन छत्र) का उदय चार
उसके ऊपर शंख धारण करनेवाले का उदय आठ भाग और उसके ऊपर छह भा
उदय में वंशपत्र और वेलडी (वल्ली) के रुप बनायें। इस प्रकार कुल पचास
छत्रवटे का उदय जानें।

छत्रवटे में तीन छत्र का विस्तार बीस अंगुल और निर्गम दस अंगुल का
भामंडल का विस्तार बाईस भाग और चौड़ाई (जाड़ाई) आठ भाग की रखें।

माला को धारण करनेवाले इंद्र सोलह भाग और उस पर अठारह भाग के
(हाथी) बनायें। दोनों ओर हरिणगमेषी देव और दुंदुभि वादक एवं शंख बजा
बनवायें।

छत्र के निर्गम के साथ छत्रवटे की चौड़ाई प्रतिमा के विस्तार से आधी
परिकर के पखवाड़े में जिस चामरधारी की अथवा काउसग्गकर्ता की मूर्ति है,
दृष्टि मूलनायकजी के ठीक स्तनसूत्र में आनी चाहिये।

पंचतीर्थी का स्वरुप

दोनों पखाड़े में जहाँ चामरधारी बनवाने का कहा गया है उस स्थान पर काउसग्ग ध्यानयुक्त दोनों प्रतिमा तथा छत्रवटे में जहां बांसुरी और वीणा को धारण करनेवाले लिखे हैं, उन दोनों स्थानोंपर पद्मासनयुक्त बैठी हुई जिनमूर्ति बनायें। इस प्रकार चार मूर्ति और एक मूलनायक की मूर्ति - ये पांच मूर्ति हो तो उसे 'पंचतीर्थी' कहते हैं। उसके भाग भी पहले बताये अनुसार करें। अर्थात् चामरधारी के भाग में काउसग्ग ध्यानयुक्त मूर्ति के तथा वांसली और वीणाधर के भाग में पद्मासनवाली मूर्ति के भाग करें।

पूजनीय और अपूजनीय मूर्ति का लक्षण

जो प्रतिमा एकसो वर्ष पूर्व उत्तम पुरुषों द्वारा स्थापित की गई हो, वह प्रतिमा विकलांग (कुरुप) हो तो भी पूजने योग्य है। उस प्रतिमा की पूजा का फल निष्फल नहीं जाता।

मुख, नाक, आंख, नाभि और कमर इतने अंगों में से कोई अंग खंडित हो जाय तो वह मूर्ति मूलनायक रुप में स्थापित हो तो उसका त्याग करें, परंतु आभरण, वस्त्र, परिकर चिह्न और आयुध इतने में से किसी का भंग हो जाय तो वह मूर्ति पूजा के योग्य मानी जाती है।

धातु (सुवर्ण, चांदी, पितल आदि) की अथवा लेप (चूना, ईंट, मिट्टी, चित्रामण आदि) की प्रतिमा अगर कुरुप (बेडोल) अथवा अंगहीन हो तो वह मूर्ति दूसरी बार बनाई जा सकती है। परंतु काष्ठ, रत्न अथवा पत्थर की मूर्ति खंडित हो जाय या कुरुप हो तो वह दूसरी बार कभी भी बनवाई जा नहीं सकती।

धातु की और ईंट, चूना, मिट्टी, चित्रामण आदि लेपमय की प्रतिमा अगर विकलांग हो अथवा वह खंडित हो जाय तो वह प्रतिमा दूसरी बार संस्कार करने योग्य है, अर्थात् उसी मूर्ति को दूसरी बार सुधारकर बनाई जा सकती है। परंतु काष्ठ या पाषाण की प्रतिमा खंडित हो जाय तो वह मूर्ति दूसरी बार सुधारी या बनवाई जा नहीं सकती। प्रतिष्ठा होने के बाद किसी भी मूर्ति का संस्कार नहीं होता। कदाचित् कारणवश संस्कार करने की आवश्यकता पड़े तो उस मूर्ति की दूसरी बार, पहले की गई विधि अनुसार प्रतिष्ठा करवानी चाहिये। कहा है कि प्रतिष्ठा होने के बाद जिस मूर्ति का संस्कार करना पड़े, तोल करना पड़े, दुष्टमनुष्य का स्पर्श हो जाय, परीक्षा करनी पड़े अथवा चोर चोरी कर जाय, इत्यादि कारणों से उस मूर्ति की दूसरी बार प्रतिष्ठा करनी चाहिये।

घर मंदिर में पूजने योग्य मूर्तियों का स्वरुप

जो प्रतिमा पाषाण की, लेप की, काष्ठ की दांत की तथा चित्रामण की हो अथवा परिकर रहित हो तथा ग्यारह अंगुल से अधिक ऊंची हो तो वह प्रतिमा घर में रखकर

पूजना अच्छा नहीं है। परिकर युक्त मूर्ति अरिहंत की और बिना परिकर की मूर्ति
की कही जाती है। सिद्ध की मूर्ति घर में पूजने योग्य गिनी नहीं जाती इस लिये वह
में पूजनी चाहिये।

श्री सकलचंद्र उपाध्याय कृत 'प्रतिष्ठाकल्प' में लिखा गया है कि - मल्लि
नेमनाथ और महावीर स्वामी इन तीन तीर्थंकरों की मूर्ति श्रावक को घर में पूजने
चाहिये। परंतु इक्कीस तीर्थंकरों की मूर्ति घर में शांतिकारक और पूजनीय तथा
है। ये तीन तीर्थंकर वैराग्यकारक होने से उनकी मूर्ति देरासर - जिनमंदिर में
करना शुभकारक है, परंतु 'घर देरासर' में स्थापित करना शुभकारक नहीं है।

घरदेरासर में एक अंगुल से 11 अंगुल तक की ऊंची मूर्ति पूजने योग्य
11 अंगुल से अधिक ऊंची हो वह मंदिर में पूजा करने योग्य है ऐसा पूर्वाचार्य कहे

प्रतिमा का शुभाशुभ लक्षण

मूर्ति के नाखून, अंगुली, भुजा नाक और पैर - इतने अंगों में से कोई अंग
बनी हुई मूर्ति हो तो वह अनुक्रम से शत्रु का भय, देश का विनाश, बंधनकारक,
नाश और द्रव्य का क्षय करनेवाली है।

पादपीठ, चिह्न और परिकर के भंगवाली मूर्ति हो तो वह अनुक्रम से
वाहन और सेवक की हानिकारक जानें। और छत्र, श्रीवत्स और खंडित
मूर्ति हो तो वह अनुक्रम से लक्ष्मी सुख और बांधवों की हानिकारक जानें।

जो मूर्ति वक्र नाकवाली हो वह बहु दुःखदाता, छोटे अवयव वाली हो तो
खराब आँखवाली हो वह आँख का नाश करनेवाली और संकरे मुखवाली हो
की हानिकारक जानें।

जो प्रतिमा कमरहीन हो वह आचार्य का नाश करे, हीन जंघावाली हो
मित्र और बंधु का नाश करे, हीन आसनवाली हो तो रिद्धि का नाश करे और
पैरवाली हो तो धन का क्षय करे।

जो प्रतिमा ऊंचे मुखवाली हो वह धन का नाश करे, चक्र गरदनवाली
स्वदेश का भंग करे, नीचा मुखवाली हो वह चिन्ता उत्पन्न करावे तथा ऊंची
वह विदेशगमन करावे।

जो मूर्ति विषम आसनवाली हो वह व्याधिकारक समझें तथा अन्याय से
किये हुए द्रव्य से बनाई गई हो वह मूर्ति दुष्काल आदि करनेवाली जानें।
अथवा अधिक अंगवाली हो वह स्वपक्ष (प्रतिष्ठा करने वाले को) तथा
करनेवाले) को कष्ट देनेवाली जानें।

जो प्रतिमा रौद्र (भयानक) हो वह कराने वाले का नाश करे, अधिक अंग वाली हो वह शिल्पी (कारीगर) का नाश करे, दुर्बल अंगवाली हो वह द्रव्य का नाश करे और कृश-पेट वाली हो वह दुर्भिक्ष करे।

प्रतिमा ऊंचे मुखवाली हो तो धन का नाश करे, तिरछी दृष्टि वाली हो तो तिरस्कार करावे, अधिक गाढ़ दृष्टि हो तो अशुभ जानें और नीची दृष्टि हो तो विघ्नकारक जानें।

देवों के शस्त्र कैसे रखें

चार निकाय के (भुवनपति, व्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक ये चार जात के) देवों की मूर्ति के शस्त्र मस्तक के केश के ऊपर तक रखे हुए हों तो वे मूर्ति करने वाले, करवाने वाले और स्थापन करने वाले के प्राण का और देश का विनाश करने वाली जानें।

इस प्रकार सामान्य रूप से देवों के शस्त्र रखने का नियम कहा, वह सभी देवों के लिये हो ऐसा नहीं दिखता, क्योंकि भैरव, भवानी, दुर्गा, काली आदि देवों के शस्त्र मस्तक के ऊपर गये हुए उनकी मूर्तिओं में देखने में आते हैं, इस से ऐसा प्रतीत होता है कि ऊपर का नियम शांत स्वभाववाले देवों के लिये होगा।

भयानक स्वभाव वाले देव असुरों का संहार करते दिखते हैं, इसलिये उनके शस्त्र उठाये हुए रहने से मस्तक के ऊपर जाय वह स्वाभाविक है, इसलिये उनका दोष नहीं गिना जाता होगा। परंतु वे देव अगर शांत चित्त होकर बैठे हों ऐसी स्थिति की मूर्ति बनवानी हो तो उस समय शस्त्र उठाये हुए नहीं रहने से शस्त्र मस्तक के ऊपर नहीं जायेंगे, जिससे उपर्युक्त नियम शांत स्वभावी देवों के शस्त्रों के विषय में कहा होगा ऐसा प्रतीत होता है।

उपसंहार

चौबीस जिनदेव, नवग्रह, चोसठ योगिनी, बावन वीर, चौबीस यक्ष, चौबीस यक्षिणी, दस दिकपाल, सोलह विद्यादेवी, आदि आदि देवों के वर्ण, चिह्न, नाम और आयुध आदि का विस्तारपूर्वक, वर्णन अन्य ग्रंथों से जानें।

(प्रतिमा विषयक विधान समाप्त)

❊ जिन-प्रासाद ❊

भूमि-खात गहराई : कूर्मशिला : शिला स्थापन क्रम

सर्वगुणदोष वाले गृह के लक्षण एवं सर्वगुणदोषयुक्त प्रतिमा के लक्षण कथन के बाद अब केवल संक्षेप में जिनप्रासाद (मंदिर) निर्मित करने की विधि :

प्रासाद-मंदिर बनवाने की भूमि का पाया वहाँ तक गहरा खोदें जब तक पा अथवा पथ्थर न आये। फिर उस (नींव) पाये के मध्यभाग में कूर्मशिला स्थापित करें और आठों दिशा में आठ खुरशिला स्थापित करें। और बाद में उसके ऊपर सूत्रवि करें।

कूर्मशिला का प्रमाण 'पासाद मंडन' आदि ग्रंथों में जो कथित है उससे जान लें। कूर्मशिला सुवर्ण अथवा चांदी की बनवायें और उसे पंचामृत से स्नान कराने के बा स्थापित करें।

कूर्मशिला (सुवर्ण की अथवा रौप्य - चांदी) का स्वरुप (विश्वकर्माकृ ''क्षीरार्णव'' ग्रंथ के आधार पर) कूर्मशिला के नव भाग करें, उसके प्रत्येक भाग में पूर्वदक्षिण आदि दिशा के सृष्टिक्रम से पानी की लहर, मछली, मेंढ़क, मगर, ग्रा कलश, सर्प और शंख इन आठ दिशाओं के भागों में और मध्य भाग में कूर्म (कछुआ) बनायें। कूर्मशिला स्थापित करने के बाद उसके ऊपर से एक रिक्त (=खाली खोखला) तांबे की नली देव के सिंहासन तक रखा जाता है उसे प्रासाद की नाभि क जाता है।

कूर्मशिला को प्रथम मध्य में स्थापित कर फिर ओसार में (चारों ओर) नं भद्रा, जया, रिक्ता, अजिता, अपराजिता, शुक्ला, सौभागिनी और धरणी ये न खुरशिला, कूर्मशिला को प्रदक्षिणा करती हुई पूर्वादि सृष्टिक्रम से स्थापित करें। (कु आधुनिक सोमपुरा जन धरणीशिला को ही कूर्मशिला कहते हैं। नंदा आदि आ खुरशिलाओं के ऊपर अनुक्रम से वज्र, शक्ति, दंड, तलवार, नागपाश, ध्वजा, ग और त्रिशुल ये दिग्पालों के शस्त्र बनवाने चाहिये। नववीं धरणी शिला के ऊपर वि का चक्र बनवाना चाहिए।

शिला स्थापन का क्रम

प्रथम मध्य में सुवर्ण अथवा चांदी की कूर्मशिला स्थापित कर, फिर आ खुरशिलाएँ ईशान कोण और अग्निकोण के अनुक्रम से सृष्टिक्रम में स्थापित करें। प्रत्येक शिला स्थापित करते समय गीत वाजिंत्र का मांगलिक ध्वनि करें।

बाद में प्रासाद को धारण करनेवाली शिला पर भिट्ट रखें - जिसका उदय एक हाथ के विस्तार वाले प्रासाद को (भिट्ट का यह उदय) चार अंगुल का रखा जाय और पचास हाथ के विस्तारवाले प्रासाद तक प्रत्येक हाथ पर आधे आधे अंगुल की वृद्धि कर के भिट्ट का उदय करें। अन्य प्रकारों से भी इस भिट्ट का मान करते हैं।

प्रासाद की पीठ का मान : पीठ के थर

प्रासाद जितने विस्तार में होता है उससे आधे भाग में से पीठ का उदय करना उत्तम है।

पीठ के थरों का स्वरूप अड्डथर, पुष्पकंठ, जाडयकुंभ, कर्णी और केवाळ ये पांच थर सामान्य पीठ में अवश्य होते हैं। उस पर गजथर, अश्वथर, सिंहथर, नरथर और हंसथर इन पांच थरों में से सभी अथवा कम यथाशक्ति बनाये जाते हैं।

प्रासाद की पीठ का मान ''प्रासादमंडन'' में विस्तार से सुंदर ढंग से दर्शाया गया है वह दक्षता पूर्वक अध्ययन कर कार्यान्वित किया जाय।

जिनेश्वर के लिये सात प्रासाद

श्री विजय, महापद्म, नंद्यावर्त, लक्ष्मी तिलक, नरवेद, कमल हंस और कुंजर ये सात प्रकार के प्रासाद जिनेश्वर के लिये उत्तम हैं।

विश्वकर्मा ने बताये हुए असंख्य भेदों वाले अनेक प्रकार के प्रासादों में से केशरी आदि पच्चीस-प्रकार के प्रासाद ये हैं -

केशरी, सर्वतोभद्र, सुनंदन, नंदिशाल, नंदीश, मंदिर, श्रीवत्स, अमृतोदभ, हेमवंत, हिमकुट, कैलाश, पृथ्वीजय, इंद्रनील, महानील, भूधर, रत्नकूड, वैडुर्य, पद्मराग, वज्रांक, मुकुटोज्वल, ऐरावत, राजहंस, गरुड, वृषभ और मेरु।

इन प्रासादों के शिखरों की संख्या अनेक होती हैं। एक उदाहरण - पच्चीस वे मेरुप्रासाद के ऊपर मुख्य एक शिखर और एक सौ अंडक (अंड) मिलकर कुल एक सौ एक शिखरों की संख्या होती है।

प्रासाद संख्या : अनेक प्रकार के मान के द्वारा नव हजार छ सौ सत्तर (9670) प्रकार के प्रासाद बनते हैं। उनका सविस्तृत वर्णन अन्य शिल्पग्रंथों से जाना जा सकता है।

प्रासाद के तल-भाग की संख्या और प्रासाद का स्वरुप

सर्व देवमंदिर में समचोरस मूल गभारे के तल भाग के आठ, दस, बारह, चौदह, सोलह, अठारह अथवा बाईस भाग किये जायें।

प्रासाद का स्वरुप

चार कोने और चार भद्र ये सभी प्रासादों में अवश्य होते हैं और कोने के दोनों भद्रार्द्ध होता है। प्रतिरथ, वोलिंजर (उपरथ) और नन्दी का मान अनुक्रम से तीन, और साड़ेतीन भाग जानें। भद्र के दोनों ओर पल्लविका और कर्णिका अवश्य बनाये

यहाँ पर इस प्रासाद का नकशा 'प्रासादमंडन' और 'अपराजित' आदि ग्रंथ आधार पर संपूर्ण भाग का दिया गया है। उसमें से अपनी इच्छानु आवश्यकतानुसार, यथाशक्ति बनाया जा सकता हैं।

दो भाग का कोना, बाद में प्रतिकर्ण से चौथाई चौथाई (1/4) भाग हीन तक करें। पल्लव, कर्णिका और भद्र का अनुक्रम से मान चौथा भाग, एक भाग ढाई भाग का जानें।

भद्रार्ध के दस भाग करें, उसमें से एक भाग की मूल नासिका करें। पौने तीन, और सवा तीन यह अनुक्रम से प्रतिरथ आदि का मान जानें।

प्रासाद के अंग

कोना, प्रतिरथ, रथ, भद्र और मुखभद्र ये प्रासाद के अंग हैं एवं नंदी, कर्णि पल्लव, तिलक और तवंग आदि प्रासाद के आभूषण हैं।

इनमें से नागरादि चार प्रकार के मंडोवर का स्वरुप 'प्रासाद मंडन' आदि ग्रंथ जानें।

प्रासाद का गभाग और भींत का मान

प्रासाद का प्रमाण भींत (दीवार 1) से बाहर कुंभा के थर तक जाने। जो मान उसके दस भाग करें, उनमें से दो + दो भाग की भींत और छह भाग का गभारा करें।

'वसुनन्दि प्रतिष्ठासार' में इसे दूसरी रीति से कहते हैं - प्रासाद के मान के भाग करें, उसमें चार भाग का गभारा करें और दो भाग की भींत करें और दो भाग जलपट करें।

प्रासाद के उदय का प्रमाण

एक हाथ के विस्तारवाले प्रासाद की ऊंचाई एक हाथ और नव अंगुल, दो हाथ विस्तारवाले प्रासाद की ऊंचाई दो हाथ और सात अंगुल, तीन हाथ के विस्तार प्रासाद की ऊंचाई तीन हाथ और पांच अंगुल, चार हाथ के विस्तारवाले प्रासाद ऊंचाई चार हाथ और तीन अंगुल, पांच हाथ के विस्तार वाले प्रासाद की ऊंचाई हाथ और एक अंगुल, इस प्रकार 'खुरा' से लेकर 'पहारु' थर तक ऊंचाई समझे।

'प्रासाद मंडन' में भी कहा है कि एक से पांच हाथ तक के विस्तारवाले प्रासाद की ऊंचाई विस्तार के बराबर करें, परंतु उसमें अनुक्रम से नव, सात, पांच, तीन और एक अंगुल अधिक करें।

पांच हाथ से अधिक छह से पचास हाथ तक के विस्तारवाले प्रासाद का उदय करना हो तो 'प्रासाद मंडन' आदि से जानें।

शिखरों की ऊंचाई

प्रासाद के मान से भुमज जाति के शिखर का उदय दुगुना (द्विगुण) अथवा पौने दो गुना, नागर जाति के शिखर का उदय प्रासाद का तीसरा भाग मिलाकर, डेढ़ गुना अथवा सवाया, द्राविड़ जाति के शिखर का उदय डेढ़ गुना और श्रीवत्स शिखर का उदय पौने दो गुना करें।

शिखर का स्वरुप

शिखर की गोलाई करने का प्रकार 'प्रासाद मंडन' में इस प्रकार बताया है -

"चतुर्गुणेन सूत्रेण सपादः शिखरोदयः।"

अर्थात् रेखा के मूल के विस्तार से चार गुने सूत्र को भ्रमण करने से शिखर की गोलाई कमल की पंखुड़ी जैसी सुंदर बनती है। शिखर का प्रासाद से सवाया उदय करने से वह अधिक सुंदर होगी।

शिखर की रचना

छाजा के ऊपर तीनों दिशा में रथिका में बिंब रखें और उस पर उरुश्रृंग बनायें। चारों कोनों पर चार कूट (इड़क) रखें, उसकी दायीं और बायीं ओर दो दो तिलक रखें।

उरुश्रृंग (उरुशिखर) और इड़क के मध्य में मूल रेखा पर चार लताएँ करें। उस लता पर चारों कोनों पर चार ऋषि रखें और इन ऋषिओं पर 'आमलसार' कलश रखें।

आमल सार कलश का स्वरुप

दोनों रेखा के बीच में प्रतिरथ के विस्तार जितना 'आमलसार कलश' का विस्तार करें और विस्तार से आधा उदय करें। उदय के चार भाग करें, उसमें पौन (3/4) भाग का गला सवाभाग का अंडक (इड़क = आमलसार के गोले का उदय), एक भागकी चंद्रिका और एक भाग की आमलसारिका बनायें।

'प्रासाद मंडन' में भी कहा है कि - दोनों उपरथ के मध्य विस्तार जितनी 'आमलसार' कलश की गोलाई करें, आमलसार के विस्तार से आधी ऊंचाई करें।

उस ऊंचाई के चार भाग करें, उसमें पौन (3/4) भाग का गला, सवा भाग आमलसार के गोले का उदय, एक भाग की चंद्रिका और एक भाग की आमल सारि करें।

आमल सार कलश की स्थापना विधि

आमलसार कलश को शिखर पर स्थापित कर उसमें रेशम की शय्या के सा चंदन का पलंग रखें, उस पर कनकपुरुष (सुवर्ण का प्रासादपुरुष) रखें और पास में से भरा हुआ श्रेष्ठ कलश रखें। यह क्रिया शुभ दिन को आमलसार को शिखर पर चढ़ा के बाद करें।

आमलसार किस वस्तु का बनवायें?

पत्थर, काष्ठ अथवा ईंट - इनमें से जिस जिस वस्तु का प्रासाद बना हुआ हो, उ उस वस्तु का आमलसार कलश बनवाना चाहिये। अर्थात् प्रासाद पत्थर का बना हु हो तो आमलसार भी पत्थर का, लकड़े का बना हुआ हो तो आमलसार भी लकड़े और ईंट का बना हुआ हो तो आमलसार भी ईंट का बनवाना चाहिये। परंतु प्रतिष्ठा जाने के बाद अपनी शक्ति अनुसार सुवर्ण से अथवा रत्न से जड़ा जा सकता है।

शुकनाश का मान

छज्जे से शिखर के कंधे तक की ऊंचाई के इक्कीस भाग करें, उसमें से नव, द ग्यारह, बारह अथवा तेरह भाग समान (प्रमाण) उदय में शुकनाश बनायें।

शुकनाश के उदय से आधा शुकनाश का विस्तार करें। इस शुकनाश को प्रास के ललाट त्रिक का तिलक माना जाता है। उस पर सिंह रखें, वह मंडप के कलश उदय के बराबर (समकक्ष) रखें, अर्थात् मंडप के कलश की ऊंचाई अधिक न रखें।

''समरांगण सूत्रधार'' में भी कहा है कि, शुकनाश के ऊंचाई से मंडप की ऊं अधिक न रखें।

''प्रासादमंडन'' में भी कहा है कि, मंडप के कलश की ऊंचाई शुकनाश के बरा अथवा नीची (अल्प, कम) रखना श्रेष्ठ है और अधिक रखना अच्छा नहीं है।

मंदिर के काम में काष्ठ किस प्रकार के उपयोग में लें?

प्रासाद, कलश, ध्वजादंड और मर्कटी (ध्वजांदड की पाटली) ये सारे एक जाति के लकड़े के बनवाये जाये तो सुखकारक है। साग, केगर, शीशम, खेर, अ और महुड़ा इन वृक्षों के काष्ठ प्रासाद आदि बनवाने के लिये शुभदायक हैं।

किस प्रकार के मंदिर नहीं बनवाये जायें ?

पानी के तल तक जिस प्रासाद का खात किया गया हो ऐसा समचोरस प्रासाद यदि भद्ररहित हो अथवा फांसी के आकार के शिखरवाला प्रासाद हो ऐसा प्रासाद जो बनवाये वह सुखपूर्वक नहीं रह सकता।

कनकपुरुष का मान

एक हाथ के विस्तारवाले प्रासाद में कनकपुरुष आधे अंगुल का करें। बाद के प्रत्येक हाथ पर पाव पाव अंगुल का अधिक बड़ा करें। जैसे कि दो हाथ के प्रासाद में तीन चतुर्थांश अंगुल, तीन हाथ के विस्तारवाले प्रासाद में एक अंगुल, चार हाथ के प्रासाद में सवा अंगुल, इत्यादि क्रम से पचास हाथ के विस्तारवाले प्रासाद में पौने तेरह अंगुल का कनक पुरुष बनवायें।

ध्वजादंड का मान

एक हाथ के विस्तारवाले प्रासाद में ध्वजादंड की चौड़ाई (जाड़ाई) पौने (3/4) अंगुल की करें। फिर प्रत्येक हाथ पर आधे आधे अंगुल की अधिक चौड़ाई करें, जैसे कि दो हाथ के विस्तारवाले प्रासाद में सवा अंगुल की, तीन हाथ के प्रासाद में सवा दो अंगुल की, पांच हाथ के प्रासाद हाथ के विस्तारवाले प्रासाद में सवा पचीस अंगुल की चौड़ाई का ध्वजादंड बनवायें। कर्ण (कोने) के उदय जितना लंबा ध्वजादंड बनवायें।

'प्रासाद मंडन' में ध्वजादंड की चौड़ाई का मान इस प्रकार बतलाते हैं - एक हाथ के विस्तारवाले प्रासाद में पौने अंगुल का चौड़ा (जाड़ा) ध्वज बनवायें। बाद प्रत्येक हाथ पर चौड़ाई की आधे आधे अंगुल की वृद्धि करें, वह पचास हाथ के विस्तारवाले प्रासाद तक करें।

ध्वजादंड की ऊंचाई का मान

खुरशिला से शिखर के कलश तक की ऊंचाई के तीन भाग करें। उसमें से एक भाग जितना लंबा ध्वजांदड करें। वह ज्येष्ठमान का ध्वजादंड होगा। ज्येष्ठमान का आठवाँ भाग ज्येष्ठ मान में से कम करें तो मध्य मान का और चौथा भाग का करें तो कनिष्ठमान का ध्वजादंड होगा।

दूसरे प्रकार से ध्वजादंड की ऊंचाई का मान - प्रासाद के विस्तार जितना लंबा ध्वजादंड करें वह ज्येष्ठमान का, ज्येष्ठ मान का दसवाँ भाग ज्येष्ठमान में से घटाकर दंड की लंबाई करने में आये वह मध्यममान का और पांचवा भाग घटाकर लंबाई करने में आये वह कनिष्ठमान का ध्वजादंड कहा जायेगा।

(सोमपुरा लोग ध्वजादंड के साल का नाप अलग करते हैं। वे कहते हैं कि दंड जितना बाहर दीखे उतना ही ठीक उदय गिना जाता है और साल है वह शिखर में बैठाया गया होने से दीखता नहीं है, जिससे वह उदय के नाप में गिना नहीं जाता। यह युक्ति संगत है, फिर भी उस सम्बन्ध में अनुभव करने अनुरोध है।)

ध्वजादंड के पर्व (खंड) और चूड़ी की संख्या

ध्वजादंड में पर्व (खंड) विषम संख्या में रखें और चूडियाँ सम संख्या में रखें वह सुखकारक है।

ध्वजादंड की पाटली का मान

दंड की लंबी के छठवे भाग जितनी लंबी मर्कटी (पाटली) बनवायें, वह लंबाई से आधे विस्तार में करें। पाटली के मुख भाग में दो अर्द्ध चंद्र का आकार बनायें। पाटली की दोनों बाजु पर घंटड़ीयाँ लगवायें और शीर्ष पर कलश रखें। अर्धचंद्र के आकारवाला भाग पाटली का मुख जानें। इस पाटली का मुख और प्रासाद का मुख एक दिशा में रखें और पाटली के मुख के पीछे के भाग में ध्वजा लगायें। पाटली की चौड़ाई (जाड़ाई) बताई गई नहीं है, परंतु 'प्रासाद मंडन' की प्राचीन भाषा-टीका में विस्तार से आधे भाग थर अथवा तीसरे भाग पर पाटली की जाड़ाई बतलाते हैं।

ध्वजा का मान

संपूर्ण बने हुए देवमंदिर के सुंदर शिखर पर ध्वजा न हो तो उस देवमंदिर में असुरों का निवास होता है। इस लिये मोक्ष के सुख को देनेवाली दंड के बराबर लंबी ध्वजा अवश्य रखनी चाहिये।

'प्रासादमंडन' में कहा है कि ध्वजादंड की लंबी जितनी लंबी और दंड के आठवें भाग जितनी चौड़ी, अनेक वर्णों के वस्त्रों से सुशोभित (ध्वजा) करें। तीन, पांच अथवा एकी पाट की शिखावाली ऐसी ध्वजा उत्तम है।

द्वार का प्रमाण

प्रासाद के द्वार का उदय एक हाथ के विस्तारवाले प्रासाद से चार हाथ के विस्तारवाले प्रासाद तक प्रत्येक हाथ पर सोलह सोलह अंगुल की वृद्धि करके करें। जैसे कि - एक हाथ के प्रासाद के द्वार का उदय सोलह अंगुल, दो हाथ के प्रासाद के द्वार का उदय बतीस अंगुल, तीन हाथ के प्रासाद के द्वार का उदय अडतालीस अंगुल और चार हाथ के प्रासाद के द्वार का उदय चोसठ अंगुल का करें। बाद में अनुक्रम से प्रासाद के द्वार तीन और दो दो अंगुल बढ़ाकर के पचास हाथ तक के विस्तारवाले प्रासाद के द्वार का उदय करें।

'प्रासाद मंडन' में नागरादि प्रासाद का थोड़ा विस्तृत द्वार मान है वह अधिक जानकारी हेतु देख सकते हैं।

द्वार के ललाट भाग की ऊंचाई में मूर्ति रखें। द्वारशाख में नीचे चौथे भाग में प्रतिहारी रखें। प्रासाद के कोनों में दिकपालों की मूर्तियाँ और मंडोवर के जंघे के थर में तथा प्रतिरथ में नाटक करती हुई पुत्तलियाँ रखें।

प्रासाद के हिसाब से प्रतिमा का मान

प्रासाद के विस्तार के चौथे जितनी ऊंचाई की मूर्ति हो तो वह उत्तम कही है। परंतु राजपट्ट (स्फटिक), रत्न, प्रवाल, अथवा सुर्वण आदि धातु की मूर्ति तो अपने इच्छानुसार नाप की बनाई जा सकती है।

''विवेकविलास'' में कहा है कि - प्रासाद के विस्तार के चौथे भाग की प्रतिमा बनायें वह उत्तम लाभ की प्राप्ति हेतु है, परंतु चौथे भाग में एक अंगुल कम अथवा अधिक रखनी चाहिये। अथवा मूर्ति का दसवाँ भाग मूर्ति में कम अथवा अधिक कर के शिल्पकार उतने प्रमाण की मूर्ति बनायें।

''प्रासादमंडन'' में कहा है कि प्रासाद के गर्भ के तीसरे भाग का प्रतिमा का मान करें वह ज्येष्ठमान की, ज्येष्ठमान की प्रतिमा का दसवाँ भाग घटाकर प्रतिमा का मान करें वह मध्यमान की और पांचवा भाग घटाकर मान करें वह कनिष्ठमान की मूर्ति जानें।

मंडनसूत्रधार कृत ''देवतामूर्ति प्रकरण'' में प्रासाद के मान से खड़ी मूर्ति का मान बताते हैं :-

एक हाथ के विस्तारवाले प्रासाद में ग्यारह अंगुल की खड़ी मूर्ति रखें, फिर चार हाथ के विस्तारवाले प्रासाद तक प्रत्येक हाथ पर दस दस अंगुल की वृद्धि करके खड़ी मूर्ति करें। बाद में पांच हाथ से दस हाथ तक के विस्तारवाले प्रासाद में प्रत्येक हाथ पर दो दो अंगुल की वृद्धि कर के और ग्यारह हाथ से पचास हाथ तक के विस्तारवाले प्रासाद में प्रत्येक हाथ पर एक एक अंगुल की वृद्धि करके खड़ी मूर्ति रखें। वह ज्येष्ठमान की जानें। ऊपर लिखित प्रमाण की मूर्ति में से मूर्ति का बीसवाँ भाग कम करके उस प्रमाण की मूर्ति बनावें तो वह मध्यममान की और दसवां भाग कम करके उस प्रमाण की मूर्ति बनावे तो वह कनिष्ठमान की जानें।

प्रासाद के हाथ के अनुसार खड़ी मूर्ति का मान

प्रासाद के हाथ		मूर्ति के अंगुल
1	-	11
2	-	21

3	-	31
4	-	41
5	-	43
6	-	45
7	-	47
8	-	49
9	-	51
10	-	53
11	-	54
12	-	55

बाद एक एक अंगुल बढ़ाते हुए पचास हाथ के प्रासाद में 93 अंगुल की खड़ी मूर्ति रखें।

प्रासाद के हाथ के मान से बैठी मूर्ति का मान

एक हाथ से चार हाथ तक के प्रासाद में प्रत्येक हाथ पर छह छह अंगुल की वृद्धि करके उस प्रमाण से बैठी मूर्ति बनवायें। फिर पांच से दस हाथ तक के प्रासाद में प्रत्येक हाथ पर तीन तीन अंगुल की वृद्धि करके उस प्रमाण की मूर्ति रखें आर ग्यारह हाथ से पचास हाथ तक के प्रासाद में प्रत्येक हाथ पर एक एक अंगुल की वृद्धि करके उस प्रमाण की मूर्ति करें, बनवायें।

प्रासाद के हाथ		मूर्ति के अंगुल
1	-	6
2	-	12
3	-	18
4	-	24
5	-	27
6	-	30
7	-	32
8	-	36
9	-	39
10	-	42
11	-	43
12	-	44

इत्यादि अनुक्रम से प्रत्येक हाथ से एक एक अंगुल बढ़ाते हुए पचास हाथ के प्रासाद में 82 अंगुल की बैठी मूर्ति रखें।

इस प्रमाण की मूर्ति में, मूर्ति का इक्कीसवाँ भाग बढ़ाकर बनवायें तो ज्येष्ठमान की और इक्कीसवाँ भाग घटाकर बनवायें तो मध्यममान की मूर्ति जानें। तथा बीसवा भाग घटाकर बनवायें तो कनिष्ठमान की मूर्ति जानें।

प्रासाद के द्वार के हिसाब से मूर्ति का मान वसुनंदि कृत "प्रतिष्ठासार" में इस प्रकार बतलाया गया है :-

प्रासाद के द्वार के आठ भाग करें, उसमें से ऊपर का आठवा भाग घटाकर बाकी के सात भाग के तीन भाग करें, उसमें एक भाग का पबासन और दो भाग की मूर्ति बनवायें, यह खड़ी मूर्ति जानें। बैठी मूर्ति रखनी हो तो दो भाग का पबासन और एक भाग की मूर्ति बनवायें।

प्रतिमा का दृष्टिस्थान

प्रासाद के मुख्य द्वार का जो उंबर (देहरा) और ओतरंग के बीचमें के उदय के दश भाग करें। उसमें नीचे के प्रथम भाग में महादेव की दृष्टि रखें। दूसरे भाग में शिवशक्ति (पार्वती) की दृष्टि रखें। तीसरे भाग में शेषशायी की दृष्टि, चौथे भाग में लक्ष्मीनारायण की दृष्टि, पांचवे भाग में वराह अवतार की दृष्टि, छठवे भाग में लेप और चित्रामयी मूर्ति की दृष्टि रखें। सातवे भाग में शासनदेव (जिनेश्वरदेव के यक्ष और यक्षिणी) की दृष्टि, इस सातवें भाग के दस भाग करके उनमें से सातवे भाग पर वीतराग (जिनेश्वर देव) की दृष्टि, आठवे भाग में चंडदेवी और भैरव की दृष्टि, नववे भाग में छत्र और चामर धारण करने वाले देवों की दृष्टि रखें।

ऊपर के दसवें भाग में किसी भी देव की दृष्टि न रखें, क्योंकि वहाँ यक्ष, गांधर्व और राक्षसों की दृष्टि है। सर्व देवों की दृष्टि का स्थान द्वार के नीचे के भाग से गिनें।

दूसरे प्रकार से जिनेश्वर का दृष्टि स्थान

कतिपय आचार्यों का मत है कि द्वार के उदय के आठ भाग करें, उसमें नीचे से गिनती करते हुए ऊपर का जो सातवाँ भाग उसके फिर से आठ भाग करें, उसका सातवाँ भाग गजांश उसमें अरिहंत देव की दृष्टि रखें। अर्थात् द्वार के चोसठ भाग कर के पचपनवें भाग पर वीतराग देव की दृष्टि रखें। इस प्रकार गृह मंदिर - घरदेरासर में भी अरिहंत की दृष्टि रखें कि जिससे लक्ष्मी आदि की वृद्धि हो।

"प्रासादमंडन" में भी कहा है कि - द्वार की उंचाई के आठ भाग करके ऊपर का आठवां भाग छोड़ दें। फिर ऊपर का जो सातवाँ भाग उस के फिर से आठ भाग करके

उसके सातवें भाग पर दृष्टि रखें। अथवा सातवें भाग के जो आठ भाग किये हैं वृष, सिंह, आय के स्थान पर अर्थात् पांचवे, तीसरे और पहले भाग पर दृष्टि रखें।

दि. वसुनंदिकृत ''प्रतिष्ठासार'' में अन्य प्रकार से कहते हैं - द्वार की ऊंचाई के नव भाग कर के नीचे के छह भाग और ऊपर के दो भाग छोड़ दें। बाकी जो भाग रहा उसके नव भाग करके उसके सातवे भाग पर प्रतिमा की दृष्टि रखें।

''देवता मूर्ति प्रकरण'' में भी अनेक देवों की दृष्टि का स्थान दर्शाते हुए प्रासाद-द्वार के उदय के आठ x आठ (8 x 8) भाग करते हुए चौसठ भागों में से 49 भाग में सरस्वती की और पचपनवे (55) भाग में जिनेश्वर की दृष्टि रखने की बात कही है।

गर्भगृह में देवों की पद स्थापना

प्रासाद के गर्भगृह (गभारा) का जो अर्ध भाग को, तीसरे भाग में जिन, कृष्ण और सूर्य को, चौथे-पांचवें भाग में अनुक्रम से ब्रह्मा और शिव को स्थापन करें।

परंतु शिवलिंग को गर्भ भाग में स्थापित करे नहीं और गर्भभाग को छोड़े भी नहीं परंतु तल मात्र अथवा अर्ध तल मात्र ईशान कोण की ओर रखें।

दीवार को सटकर बिंब स्थापन करे नहीं

दीवार के साथ लगा हुआ देवबिम्ब और उत्तमपुरुषों की मूर्ति सर्वथा अशुभ है, परन्तु चित्रित नाग आदि देवों की मूर्ति जो स्वाभाविक लगी हुई हो तो उसका दोष नहीं है।

जगती का स्वरुप

''जगती'' अर्थात् मंदिर की मर्यादित भूमि और प्रासाद का अंतर पीछे के भाग में प्रासाद से छह गुना, आगे के भाग में नव गुना, दायें तथा बायें पार्श्व में तीन तीन गुना रखें। यह मंदिर की मर्यादित भूमि है।

''प्रासाद मंडन'' में जगती का स्वरूप विस्तार से कहते हैं :- प्रासाद की मर्यादित भूमि उसे ''जगती'' कहते हैं। जैसे राजा का सिंहासन रखने के लिये भूमि मर्यादित रखी जाती है, वैसे प्रासाद के लिये भी समझें।

समचोरस, लंब चोरस, आठ कोनेवाली, गोल (वर्तुलाकार) और लंबगोल पांच प्रकार की जगती है। उसमें से जैसे आकार का प्रासाद हो वैसे आकार की जगती करें। जैसे - सम चोरस प्रासाद को समचोरस जगती, लंबचोरस प्रासाद को लंबचोरस जगती इत्यादि क्रम से जानें।

प्रासाद के विस्तार से जगती तीन गुनी, चार गुनी अथवा पांच गुनी करें। उन में तीन गुनी कनिष्ठमान की, चार गुनी मध्यम मान की और पांचगुनी ज्येष्ठ मान की जगती जानें।

कनिष्ठमान के प्रासाद को कनिष्ठमान की जगती, ज्येष्ठमान के प्रासाद को ज्येष्ठमान की जगती और मध्यममान के प्रासाद को मध्यममान की जगती, प्रासाद के लक्षण जैसी बनायें।

च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवल और मोक्ष के स्वरूपवाली देवकुलिकायुक्त जिन के प्रासाद को छह अथवा सात गुनी जगती करें। उसी प्रकार द्वारिका प्रासाद और त्रिपुरुष प्रासाद को जानें।

मंडपानुसार मंडप के विस्तार से सवा गुनी, डेढ़ गुनी अथवा दुगने विस्तार की जगती बनायें।

तीन भ्रम वाली ज्येष्ठा, दो भ्रमवाली मध्यमा और एक भ्रमवाली कनिष्ठा जगती जानें। जगती की ऊंचाई के तीन भाग करके उस प्रत्येक भाग जितनी भ्रमणी की ऊंचाई जानें।

चार कोने वाली, बारह कोने वाली, बीस कोने वाली, अट्ठाईस कोने वाली अथवा छत्तीस कोने वाली जगती बनायें।

जगती की ऊंचाई

प्रासाद का विस्तार एक हाथ से बारह हाथ तक हो तो जगती की ऊंचाई प्रासाद से आधी रखें, अर्थात् प्रत्येक हाथ पर बारह बारह अंगुल बढ़ाकर करें। तेरह से बाईस हाथ के विस्तारवाले प्रासाद के तीसरे भाग से ऊंचाई करें। तैबीस से बत्तीस हाथ के विस्तारवाले प्रासाद को चौथे भाग से ऊंचाई करें। तैंतीस से पचास हाथ के विस्तारवाले प्रासाद को पांचवे भाग से जगती ऊंची करें।

प्रकारान्तर से

एक हाथ के विस्तारवाले प्रासाद को एक हाथ की ऊंची जगती, दो से चार हाथ तक के प्रासाद को ढ़ाई (गुने) भाग की, पांच से बारह हाथ तक के प्रासाद को दूसरे भाग से, तेरह से चौबीस हाथ के प्रासाद को तीसरे भाग से और पचीस से पचास हाथ तक के प्रासाद को चौथे भाग से जगती की ऊंचाई करें।

जगती की ऊंचाई के थर

जगती की ऊंचाई के अट्ठाईस भाग करें, उसमें तीन भाग का जाड्यकुंभ, दो भाग की कणी, पद्मपत्र सहित तीन भाग की ग्रासपट्टी, दो भाग का खुरो, सात भाग का कुंभ,

तीन भाग का कलश, एक भाग का अंतरपत्र, तीन भाग का केवाल और चार भाग का पुष्पकंठ बनायें।

पुष्पकंठ से जाड्य कुंभ का निर्गम आठ भाग का करें। पूर्वादि दिशाओं में सृष्टि क्रम से दिक्पालों को जगती के कोने में स्थापित करें।

जगती में गढ़ मंडप आदि की रचना

जगती किला (गढ़) द्वारा सुशोभित करें। गढ़ की चारों दिशाओं में एक एक द्वार मंडप सहित बनवायें। पानी निकलने के लिये मगर के मुखवाली परनालियाँ रखें दरवाजे के आगे तोरण और सोपान (पर्गाथिये) बनवायें।

बलाणक (मंडप) के द्वार के आगे सोपान और दोनों ओर हाथी की आकृति करें बनवायें। दरवाजें के आगे स्तंभ, तोरण करें वह मध्य पद के अनुसार करें।

तोरण के दोनों स्तंभों का मध्य विस्तार गर्भगृह अनुसार रखें ''बलाणक (द्वार मंडप) की दीवार गर्भगृह की दीवार के अनुसार करें। उन दोनों के मध्य में तोरण, स्तंभ बनवायें।

द्वारमंडप की पीठ प्रासाद की पीठ जैसी करें। वह रूपों के द्वारा बहुत सुशोभित करें। मंडप में देव के हिंडोले, तोरण आदि अनेक प्रकार के तोरण बनवायें।

प्रासाद के समीप मंडप आदि का क्रम

प्रासाद कमल (गर्भगृह) के आगे गूढ़ मंडप, गूढ़ मंडप के आगे छह चोकी, छह चोकी के आगे रंगमंडप और रंगमंडप के आगे तोरण युक्त बलाणक (दरवाजे के ऊपर का मंडप) इस प्रकार मंडप का क्रम रखें।

प्रासाद की दायीं और बायीं ओर शोभा मंडप और गवाक्षयुक्त शाला बनवायें जिस में गांधर्व देव गीत, नृत्य और विनोद करते हों।

मंडप का मान

प्रासाद के विस्तार के बराबर नाप का तथा दुगनें, डेढ़गुने अथवा पौने दो गुने नाप का मंडप बनवाना चाहिये। मंडप के उदय के सोपान तीन अथवा पांच बनवायें। मंडप में चोकियाँ बनवायें।

स्तंभ का उदय और उस के थरों का मान

मंडप की गोलाई के आधे भाग का स्तंभ का उदय करें। जो उदय आये उसके नव भाग करें। उसमें एक भाग की कुंभी, पांच भाग का स्तंभ, पौने भाग की भरणी, सवा भाग की शिरावटी और एक भाग का पाट करें।

ध्वजा दंड की पाटली, कलश, स्तंभ और द्वारशाख का विस्तार

प्रासाद के विस्तार के आठवे भाग पर ध्वजादंड की पाटली का, कलश का और स्तंभ का विस्तार करें। तथा प्रासाद के दसवे भाग पर द्वारशाखा का विस्तार करें। कलश के विस्तार से कलश का उदय पौने दो गुना करें।

कलश का उदय 'प्रासाद मंडन' में इस प्रकार दर्शाते हैं - कलश के गले (गर्दन) का तथा पीठ का उदय एक एक भाग, अंडक अर्थात् कलश के मध्य भाग का उदय तीन भाग, कर्णिका का उदय एक भाग और बीजोरे का उदय तीन भाग करें। कुल मिलाकर कलश के उदय के नव भाग करें।

नाली का मान

एक हाथ के विस्तारवाले प्रासाद को पानी निकलने की नाली का उदय चार जव अर्थात् आधा अंगुल बनवायें, बाद में प्रत्येक हाथ पर आधे आधे अंगुल की वृद्धि करते जायें। जगती के एवं मंडोवर के उदय में छज्जे के ऊपर चारों दिशाओं में पानी निकलने की नालियाँ बनवायें।

'प्रासाद मंडन'' ग्रंथ में कहते हैं कि - पूर्व और पश्चिम दिशा के द्वारवाले प्रासाद को उत्तरदिशा की ओर पानी निकलने की नाली बनवायें, वह मगर के मुखवाली करें। उत्तर दिशा के मुखवाले देवों के प्रक्षालन का पानी निकलने की नाली बायीं और दायीं ओर रखें। मंडप में जो देव प्रतिष्ठित हो उसकी दायीं अथवा बायीं ओर एवं जगती की चारों दिशाओं में बुद्धिमान लोग नाली बनायें।

किन किन वस्तुओं को समसूत्र में रखें

पाट के नीचे एवं छज्जे के नीचे प्रत्येक वस्तु को बराबर समसूत्र में रखें। ऊंबर (देहले) के बराबर कुंभी और स्तम्भ के बराबर प्रत्येक स्तम्भ रखना चाहिये।

शाखा का स्वरूप ''प्रासाद मंडन'' ग्रंथ में इस प्रकार दर्शाते हैं :- तीन, पांच, सात अथवा नव अंगवाला प्रासाद होता है, उस में जितने अंग का प्रासाद हो, उतनी शाखा वाला द्वार उस प्रासाद के लिये बनवायें। परंतु प्रासाद के अंग से कम शाखा वाला द्वार तो नहीं ही बनवायें। अर्थात् पांच अंगवाले प्रासाद को तीन शाखावाला द्वार न बनवायें, समान शाखावाला अथवा अधिक शाखावाला द्वार बनवायें वह सुखकारक है।

त्रिशाखा

त्रिशाखा के विस्तार के चार भाग करें, उसमें एक एक भाग की दोनों ओर शाखा करें और मध्य में दो भाग का रूपस्तम्भ बनवायें। वह स्तम्भ पुल्लिंगसंज्ञक है।

शाखा स्त्रीसंज्ञक है, वह स्तम्भ की दोनों ओर एक एक भाग की बनवायें। रूपस्तम्भ का निर्गम एक भाग का करें।

वह रूपस्तम्भ एक, डेढ़, पौने दो अथवा दो भाग का निकलता हुआ बनवायें, जैसी द्रव्य की अनुकूलता - सुविधा हो, तदनुसार करें।

द्वार के विस्तार के चौथे भाग पर शाखा का विस्तार करें स्तम्भ और शाखा में कोने-कोनियाँ बनवायें, उनमें चंपा के पुष्प की आकृतियाँ (चंपाछड़ी) बनवायें जो शोभा के लिये हैं।

दरवाजें की ऊंचाई के चार भाग करें, उसमें एक भाग के उदय में द्वारपाल बनवायें और शेष तीन भाग उदय में स्तम्भ और शाखाएँ बनवायें।

पंचशाखा

शाखा के विस्तार के छह भाग करें, उसमें मध्य का रूपस्तम्भ दो भाग का करें और दोनों बाजु एक एक भाग की चार शाखाएँ करें। शाखा के नाम - प्रथम पत्रशाखा, दूसरी गांधर्वशाखा, तीसरा रूपस्तम्भ, चौथी खल्व शाखा और पांचवी सिंह शाखा समझें।

सप्त शाखा

शाखा के विस्तार के आठ भाग करें, उसमें मध्य का रूपस्तंभ दो भाग का करें और उसकी दोनों बाजु एक एक भाग की छह शाखाएँ करें। उसके नाम -प्रथम पत्रशाखा, दूसरी गांधर्वशाखा, तीसरी रूपशाखा, चौथी रुपस्तंभ शाखा, पांचवी रूपशाखा, छठवी खल्वशाखा और सातवी सिंहशाखा समझें।

नव शाखा

इस में दो रूपस्तम्भ आते हैं, इसलिये मध्य का रूपस्तम्भ दो भाग का और शेष शाखाएँ एक एक भाग की हो।

उंबरा (देहली) का मान

मूल रेखा के सूत्र में कुंभी के समान उंबरा बनायें। उंबरे का स्थापन करते समय उसके नीचे पांच रत्न रखें और शिल्पियों का सन्मान करें।

द्वार की चौड़ाई के तीन भाग करें। उसमें एक भाग का मध्य में मंदारक (माळु) बनवायें, वह मंदारक गोल (वर्तुलाकार) और कमलपत्र सहित बनवायें।

उंबरे के उदय को जाड्य कुंभ, कणी और केवाल का कणपीठ करें। मंदारक की दोनों बाजु पर एक एक भाग के कीर्तिमुख (ग्रासमुख) बनायें और उंबरे के दोनों बाजु पर 'तलकडा' अर्थात् शाखा के तल उंबरे के शीर्षभाग के समान बनायें।

उंबर का उदय कुंभी के उदय से आधा भाग अथवा तीसरा भाग अथवा चौथा भाग नीचा बनवायें।

शंखावटी का मान

खुरा के उदय के बराबर (समानांतर) शंखावटी का उदय करें, शंखावटी की लम्बाई द्वार के विस्तार जितनी करें और लंबाई से आधी चौड़ी निकलती हुई बनवायें।

शंखावटी की लंबाई के तीन भाग करें, उसमें दो भाग का बीच में अर्धचन्द्र करें और एक भाग के दो अर्थात् आधे आधे भाग के अर्धचन्द्र की दोनों बाजु एक-एक गगारा करें। गगारा और अर्द्धचन्द्र के बीच में शंख और वेल सहित कमल-पुष्प बनवायें।

चौबीस जिनालय का क्रम

चौबीस जिनालय युक्त देरासर निर्मित करना हो तो मध्य के प्रमुख देरासर के सन्मुख तथा दायीं और बायीं बाजु की ओर इन तीनों दिशाओं में आठ आठ देहलियाँ जगती के अंदर बनवायें।

चौबीस जिनालय में प्रतिमा का स्थापन क्रम

देहलियों में सिंहद्वार (प्रवेशद्वार) के दाहिनी ओर से अर्थात् प्रथम देरासर में प्रवेश करते हुए अपनी बायीं ओर से अनुक्रम से ऋषभदेव आदि जिनेश्वर की मूर्तियों की सृष्टिमार्ग से स्थापना करें। इस प्रकार सर्व जिनालय में समझें।

चौबीस तीर्थंकरों में से जिस की मूर्ति एक मूलनायक हो, उस तीर्थंकर की मूर्ति जिस देहली की पंक्ति में आती हो उस स्थान पर सरस्वती देवी की मूर्ति स्थापित करें।

बावन जिनालय का क्रम

चौंतीस देहलियाँ मध्य के मुख्य प्रासाद की बायीं और दायीं ओर अर्थात् दोनों ओर सत्रह सत्रह देहलियाँ, नव देहलियाँ पीछे के भाग में और आठ देहलियाँ आगे, इस प्रकार कुल मिलाकर इक्यावन / एकावन देहलियाँ और बीच में एक मुख्य प्रासाद मिलकर बावन जिनालय बनते हैं।

बहत्तर जिनालय का क्रम

मध्य के मुख्य जिन मंदिर की बायीं और दायीं ओर पचीस पचीस पीछे ग्यारह और आगे के भाग में दस, इस प्रकार एकोत्तर (इकत्तर - 71) देहलियाँ और एक मध्य का मुख्य प्रासाद मिलकर कुल बहत्तर जिनालय बनते हैं।

शिखरबंध काष्ठ (लकड़ी के) प्रासाद का फल

उपरथ और भद्र आदि अंगवाला तथा तिलक और तवंग आदि आभूषणवाला शिखरबंध ऐसा काष्ठ (लकड़ी) का देरासर हो तो वह घर में पूजने योग्य नहीं है और घर में रखना भी नहीं चाहिये। परंतु तीर्थयात्रा में साथ में हो तो उसका दोष नहीं है।

परंतु तीर्थयात्रा से लौटकर के उस शिखरबंध लकड़ी के देरासर को रथशाला में अथवा देवमंदिर में रखें। फिर कभी वैसा तीर्थयात्रा संघ निकले तब काम आ सकता है।

घर मंदिर - देरासर का वर्णन

पुष्पक विमान के आकारवाला काष्ठ - लकड़ी - का देरासर बनवायें। पहले जिस प्रकार उपपीठ, पीठ और फरस बनवाने का कहा है उस प्रकार बनवायें।

चार कोने में चार थंभ, चारों दिशाओं में चार द्वार और चार तोरण और चारों बाजु छज्जे बनवायें। ऊपर करेण के फूल की कली जैसे पांच शिखर (मध्य में एक घुमट और चारों कोनों में एक एक घुमटी) बनवायें। वैसे एक दो अथवा तीन द्वारखाला और एक घुमटवाला भी बनाया जा सकता है।

भींत (दीवार) और छज्जेवाला घर देरासर ठीक से शुभ आय आदि मिलाकर ही बनवायें। गर्भभाग समचोरस रखें। गर्भभाग से सवा गुणा उदय में रखें।

गर्भ के विस्तार से छज्जे का विस्तार सवागुना करें अथवा गर्भ का तीसरा भाग गर्भ के विस्तार में मिलाकर उतना विस्तार करें अथवा डेढ़ गुना करें। विस्तार से सवागुना उदय में और आधा निर्गम में करें।

ध्वजा स्तम्भ और तोरणवाले घर देरासर के ऊपर मंडप के शिखर जैसा शिखर करें अर्थात् मंडप के ऊपर जैसा घुमट होता है वैसा घुमट करें, परंतु करेण के फूल की कली के आकारवाला शिखर नहीं बनवायें। घर मंदिर में प्रतिमा रखें और छज्जे में जलवट करें।

घर देरासर में घुमट पर ध्वजादंड कभी भी न रखें, परंतु आमसार कलश ही रखें ऐसा शास्त्रों में कहा गया है।

मूल ग्रंथकार की प्रशस्ति

श्रीधंधकलश नामक उत्तम कुलोत्पन्न शेठ 'चन्द्र' के सुपुत्र ठक्कुर फेरु ने करनाल में रहकर और प्राचीन शास्त्रों का अवलोकन कर अपने तथा पर के उपकार हेतु, विक्रम संवत् 1372 की साल में विजय दशमी के दिन घर, प्रतिमा एवं प्रासाद के लक्षणवाला यह वास्तुसार नामक शिल्पग्रंथ रचित किया है।

इसे "वास्तुसार प्रकरण" नाम से, सौराष्ट्र के पादलिप्त पुर (पालीताणा) निवासी पंडित भगवानदास ने अनुवादित किया है।

आशीर्वाद एवं अनुमति - प्रदाता वर्तमान जैनाचार्य की प्रशस्ति

कवि - मनीषी, शिल्प - स्थापत्य पुरस्कर्ता राष्ट्रसंत आचार्यश्री जयन्तसेनसूरीश्वरजी ने न केवल यह ग्रंथ वर्तमान संशोधक - संपादक - अनुवादक को सौंपकर स्वपर हिताय पुनर्प्रकाशित करने प्रेरणा और आशीर्वाद दिये, अपितु वर्षों पूर्व उसके अपने बेंगलोर के मूल निवास पर भी स्वयं पधारकर वास्तुदोष परिहारादि मार्गदर्शन प्रदान किया। इस पावनस्मृति के साथ उनका कृतज्ञ अभिवादन करते हुए इस अन्य प्राचीन - अर्वाचीन वास्तु ग्रंथों से, अधिकतर जैन वास्तु ग्रंथों से प्रेरणा और आनंद प्राप्त कर "स्वान्तः सुखाय, सर्वजन हिताय च" यह ग्रन्थ, अनेक स्थानों पर कुछ संक्षेप करके आधुनिक संदर्भ में प्रस्तुत कर धन्य हो रहे हैं। आशा है सभी को यह प्रयास उपयोगी, उपादेय होगा।

27.04.2009
वै.शु.३, सोमवार
बेंगलोर

- प्रतापकुमार ज. टोलिया
- सुमित्रा प्र. टोलिया
'पारूल'
1580 कुमारस्वामी ले आउट
बेंगलोर - 78

॥ ॐ अर्हम् नमः ॥

वर्धमान भारती इन्टरनेशनल फाउन्डेशन रजत जयंती के उपलक्ष में
वर्तमान - युगीन महती आवश्यकता - आयोजना

जिनाराधक वास्तुग्राम

जैन आवास / जैन ग्राम
जैन आश्रमिक आवास
जैन आराधक आवास

※ नगर मध्य अनेक स्थानों में ※ नगर बाहर तीर्थस्थानो में ※

- प्रा. प्रतापकुमार टोलिया

"अहमिको खलु शुद्धो, निर्मल ज्ञान दर्शन विशुद्धो
न विअस्ति मम किञ्चित् एक परमाणु मित्तंपि॥"

(जिनवचन)*

एक परमाणु मात्र की भी संस्पर्शना से रहित ज्ञान दर्शनमय आत्मा की विशुद्ध, असंग, एकाकी अवस्था की संप्राप्ति वीतरागप्रणीत जिनमार्ग का गन्तव्य है, चरम लक्ष्य है। आत्मा की इस लक्ष्यभूत अवस्था की उपलब्धि संकल्पजन्य 'उपादान' कारण के उपरान्त परिस्थितिजन्य 'निमित्त' कारण पर भी अवलंबित आधारित है - विशेषकर सर्वसामान्य आराधक आत्माओं के लिये।

इन निमित्त कारणों में वातावरण, पर्यावरण, बाह्य परमाणुग्रसित परिस्थिति का संस्कार निर्वहन, जैन संस्कार निर्माण के अनुकूल होना अत्यन्त आवश्यक है।

वर्तमान युगीन विश्रृंखलित, विक्षुब्ध, विलासपूर्ण एवं विकृतिमय विध्वंसक अवस्थाओं में यह संस्कार - संरक्षक - संवर्धन अत्यन्त सजगता की अपेक्षा रखता है।

संस्कार - निर्वहन की इस प्रक्रिया में व्यक्ति एवं समष्टि के आवास स्थान का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

---

* प्राकृत पाठ भेद :-

"अहमिक्को खलु सुद्धो, णिम्ममओ णाणदंसणसमग्गो।
तम्हि ठिओ तच्चित्तो सव्वे एए खयंणेमि॥"

- समणसुत्तं : 192 - 15 (पृ.60)

अर्थात् मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, ममता रहित हूँ तथा ज्ञान-दर्शन से परिपूर्ण हूँ। अपने इस शुद्ध स्वभाव में स्थित और तन्मय होकर मैं इन सब परभावों - परपरमाणुओं का क्षय करता हूँ।

आत्मा की विशुद्धावस्था की हिमालय शैल-सी अवस्था को इंगित करने वाले जैनदर्शन - जैन जीवन जैन शासन संस्कृति ने कभी 'आत्मा को बसाने वाले देह' को समुचित स्थान में बसाने की आवश्यकता व्यवस्था की उपेक्षा नहीं की। परम विशुद्ध परमाणुमय परम ज्ञानियों के तीर्थस्थान एवं सामान्य शुद्धि-युक्त श्रावक आराधकों के आवास स्थान इस सम्बन्ध में बहुत कुछ कहते है।

कई सूत्र-ग्रन्थों में आगम ग्रन्थों से लेकर 'धर्मबिन्दु' एवं 'वास्तुप्रकरण सार' जैसे कई वैज्ञानिक जैन शास्त्र ग्रंथ एवं कई प्रत्यक्ष जिन प्रासाद,जिनालय, जैन आवास इस बात के साक्षी हैं।

जिनाराधक श्रावकों के आवास किस बसति-वातावरण में हों, कैसे हों, किस प्रकार के हों, सूर्यप्रकाश - शुद्धवायु - शुद्ध प्राणशक्ति - प्रदाता किस दिशा में हों, किस परिमाण - प्रतिमान के हों - इन अनेक बातों से, दिशानिर्देश से स्पष्ट मार्गदर्शन से, ये सारे ग्रन्थ भरे हुए हैं। ग्रन्थों के अनुसार प्रत्यक्ष प्रायोगिक तथ्यों को पुष्ट करनेवाले उपर्युक्त कई भवन, मकान, प्रासाद भी उदाहरण के तौर पर आज भी देते हैं। इन आवासों - भवनों के उपरान्त, सदियों से जैन संस्कृति की जैन शिल्प स्थापत्य एवं वास्तु शास्त्र की गरिमा की यशगाथा गानेवाले अनगिनत जिनालय - जिन मंदिर प्राचीनता से अर्वाचीनतम हमारे सन्मुख उपस्थित हैं।

इन जिन - बिम्ब स्थानों के साथ साथ जिन - साधना - स्थानों, जिन - विद्या स्थानों का भी कुछ लुप्त-सा जैन इतिहास संशोधन की अपेक्षा रखता है। परन्तु इसे अभी यहीं छोड़कर जिन श्रावकों - आराधकों को अपने व्यवहार निर्वहनपूर्ति के लिये जहाँ बसना है उन आवास - स्थानों की प्राचीन स्थिति का संक्षेप में अध्ययन करते हुए हमें हमारे वर्तमान श्रावकों के आवास - स्थानों की ओर आना है।

श्रावकों के आवास : वर्तमान का धरातल

आज हमारे औसतन श्रावक बन्धुओं की आवास - अवस्था क्या है? महानगरों में एवं मध्यम शहरों में विशेषकर, एवं गांवों में भी गौणरुप से।

क्या कभी हम निरीक्षण करते हैं, सोचते और चिन्ता करते हैं कि जिन पर जिनमार्ग के, जैनधर्म के पालन - संवर्धन का आधार है ऐसे हमारे महदंश श्रावक किस अवस्था में जी रहे हैं? क्या उनकी आय एवं उनकी प्रवृत्ति का विस्तार उन्हें स्वास्थ्यप्रद एवं अपनी आराधना को बल देनेवाले अपने संस्कारों को बनाये रखने में सहाय - क्षम ऐसे आवास - निवास प्रदान करते हैं? एक ओर तो संपन्न श्रावकों की विलासमय अट्टालिकाएँ हैं, तो दूसरी ओर विपन्न श्रावकों की स्थिति ?

"तुम जलाशय में थिरकते, प्यास हम ढोते रहे।
रोशनी दासी तुम्हारी, हमें तो अंधे पथ चले॥"

संपन्नों के प्रति विपन्नों का, अभाव ग्रस्तों का यह उद्बोधन क्या कहता है?

विशाल निरीक्षण और सर्वेक्षण यह स्पष्ट करता है कि वर्तमान के अधिकांश मध्यम-वर्गीय एवं निम्न- वर्गीय श्रावक स्वास्थ्य एवं साधन-आराधन दोनों दृष्टियों से निकृष्ट ऐसे आवासों में जी रहे हैं, जीवन को बोझवत् ढो रहे हैं - बिना किसी प्रसन्नता, उल्लास और सुख-शांति के। इन में कुछ अवश्य दरिद्र हैं, फिर भी अ-दीन मन के पुणिया श्रावकवत् अल्पसंतुष्ट एवं निज मस्ती में लीन ऐसे जन भी हैं, परन्तु लाखों में थोड़े से ही। भारत के अधिकतम नगरों, शहरों, गावों के अधिकतम श्रावकों का जन जीवन इस दृष्टि से बड़ा ही चिन्तनीय है, चिन्तास्पद है, उनके पुनरुत्थान की अपेक्षा रखता है। मनुष्य के "वास" का प्रथम आधार ही जहाँ निकृष्ट, संकीर्ण एवं कुंठित है, वहाँ आगे के अन्य आधारों की बात बाद की रह जाती है। यह कठोर वास्तविकता, यथार्थता हमारे स्वयं के एवं अन्य अनेक सहयोगियों के व्यापक निरीक्षण - सर्वेक्षण से प्रतिबिम्बित हुई है। जिस किसी सजग, सचिन्त व्यक्ति या संस्था को इस तथ्य में सन्देह होवें, वे अपना निज अनुभव पूर्ण अवलोकन सर्वेक्षण अवश्य करें और उससे समाज को अवगत करायें। इस ओर हम अधिक गहराई से यहाँ विश्लेषण करना नहीं चाहेंगे।

आज के हमारे विभीषिकाओं एवं विषमताओं से भरे वर्तमान में, पंचम काल के वर्तमान में, न तो हम आदियुगीन ऋषभ युगीन अथवा नेम युगीन अथवा पार्श्व - युगीन व्यवस्थाओं की कल्पना कर सकते हैं, न गायों - गोकुलों से भरे आनन्दादि संपन्न श्रावकों के महावीर - युगीन श्रावकों के, विभिन्न आवासों की तुलना कर सकते हैं। परन्तु हम कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य एवं स्वनामधन्य महाराजा कुमारपाल के समय की श्रावक-जन की 'सम' एवं 'संपन्न' स्थिति को तो अपना आदर्श बना सकते हैं। ऐसी साम्यभरी समाज व्यवस्था में न तो कोई श्रावक 'दीन' रह सकता है, न सुयोग्य समुचित 'आवास-विहीन'। पर क्या आज हमारे समक्ष एक 'स्व-केन्द्रित' एवं 'स्व-पुण्य के ही कामी' श्रावक-समूह के सिवा कोई सुव्यवस्थित समाज है भी? आज वास्तविक अर्थ में न तो कोई 'समाज' है, न कोई 'व्यवस्था' - 'समाज-व्यवस्था'। एक हेमाचार्य अपने श्रावकों की दीनता से द्रवित होकर आदेश दे सकते हैं उन्हें ऊंचा उठाने का एवं एक कुमारपाल ही उसे शिरोधार्य कर बीड़ा ग्रहण कर लेते हैं उनके उद्धार का, उत्थान का जब कि आज...? महाप्रश्न है यह प्राण प्रश्न है यह।

आज है कोई दानवीर ? है कोई युगाचार्य?

आज भारत के अत्यन्त ही अनुमोदनीय ऐसे पंजाब, लुधियाणा और महाराष्ट्र - बम्बई इत्यादि के अपवाद रुप उदाहरणों को छोड़कर, व्यापक स्तर पर भारत के

प्रत्येक नगर, प्रत्येक शहर, प्रत्येक गांव में ऐसे ही नहीं ; इन से भी विशेष बढ़कर स्वास्थ्य-साधना पूर्ण जैन आवासों की विशाल आयोजना करने वाले हैं - कोई दानवीर, हैं कोई कर्मवीर, हैं कोई धर्मवीर श्रावक और हैं कोई उनके सृजक प्रेरक युगवीर आचार्य ? युगाचार्य?

वर्तमान के महारथी श्रावकों - आचार्यों की गतिविधियों का यदि हम तटस्थ लेखा - जोखा करें तो हमारे अनेक क्षेत्रों में अनेक अनुमोदनीय कार्यों का महत् योगदान होते हुए भी यह कहना होगा कि सात क्षेत्रों में से महत्त्व का एक क्षेत्र, कि जिस से सारे जैन समाज एवं जैन धर्म का विकास सम्बन्धित है, उपेक्षित रह गया है। वह है श्रावक-श्राविकाओं के समुचित योगक्षेम का। हमारा प्रवृत्ति प्रवाह और दान प्रवाह कई दिशाओं में बहा है (अग्रता - झीळेंळीं या बिन-अग्रता के विवेक के बिना) परन्तु श्रावक को समृद्ध करना, स्वस्थ करना एवं आंतरिक संनिष्ठा सह सद्धर्माभिमुख करना अभी शेष रह गया है। और इस प्रक्रिया में प्रमुख है उनके सुचारु आवास की एवं जीवनयापन जीवन निर्वहन की व्यवस्था। इस दिशा में हम कितना कर पायें हैं इस बात का क्या हम प्रामाणिक निरीक्षण, आत्म-निरीक्षण करेंगे ? श्रावक का आवास, श्रावक का स्वास्थ्य, श्रावक की आजीविका, श्रावक की शिक्षा, श्रावक का संस्कार-निर्माण - इन सभी बातों पर क्या निर्भर नहीं, उस की धर्माराधना ? धर्मप्रभावना? उचित आवासविहीन, उचित आजीविका विहीन, अनेक चिन्ताओं आधि-व्याधि-उपाधि, अभावों से घिरा हुआ श्रावक क्या करेगा धर्माराधना? कैसे करेगा? क्या हमने कभी सोचा है गहराई से, एक दर्दी कवि के शब्दों में, कि -

"क्या क्या खाकर जीते हैं वे? क्या क्या पीकर जीते हैं?
क्या क्या पहनकर जीते हैं वे? कहाँ कहाँ बसकर जीते हैं वे?"

हमारे भावी आधार ऐसे बालकों को संस्कार देनेवाले हमारे सामान्य श्रावक ही नहीं, कई धर्माराधक, धर्मसंनिष्ठ, धर्मप्रचारक, धर्माभ्यासी विद्वान एवं विद्याजीवी कलाकार श्रावक भी कैसे जी रहे हैं, अन्य धर्मी लोगों की तुलना में कैसे जी रहे हैं, यह हमने कभी देखा? कभी सोचा?

यदि हमें बसने को अच्छा आवास, पुण्ययोग से मिला है तो क्या हमें कभी यह भाव होता है कि मैं अच्छे मकान में रह रहा हूँ तब दूसरा, मेरा सहधर्मी बन्धु ही गंदे मलिन घर में रह रहा है उसे उठाने का, सहायभूत होने का क्या, कौन-सा प्रयत्न करूं? यदि हमें अच्छा भोजन नसीब होता है तो भूखों को एकाध दिन ही नहीं, नित्यप्रति जीवन - भोजन मिलता रहे ऐसी व्यवस्था जुटाने क्या करूं?

ऐसे अन्यों से, अन्यजनों से, साम्यावस्था का करुणाभाव यदि हमारे भीतर जगे तब तो जिनेश्वरों की शिक्षा कुछ हमारे पल्ले पड़ी मानी जायेगी।

क्या हमें ज्ञात नहीं कि हमारे मूर्द्धन्य मार्गप्रदाता जिन भगवन्तों ने एवं अनेक अनुगामियों ने अपनी धन सम्पदा अन्यों के लिये कैसे लुटा दी? क्या हमें याद नहीं कि हमारे इन "खुले हाथों एवं सालों भर" दान धारा बहानेवाले राजकुमारों से लेकर अनेक श्रेष्ठिजनों ने "मुर्छामय परिग्रह त्याग" का कैसा उदाहरण प्रस्तुत किया?

विश्वकल्याण कर जिनेश्वर भगवंतों का "सर्वोदयतीर्थमय जैन धर्म" सदा अपरिग्रह का धर्म रहा है, मानवतावादी धर्म रहा है, देनेवाला - सब कुछ लुटा देनेवाला धर्म रहा है और वह भी बिना किसी उपकारभाव अहंभाव के, बिना मान-गुमान के, जगत् के ऋणों और परमाणुओं से मुक्त होने के भाव को लेकर।

किन्तु ऐसी महान् उदार त्याग परम्परा के वारिस ऐसे आज हम कहाँ है? हम कहीं "हिसाबी" तो नहीं बन गये?

हमें हमारी दानधारा को और वह भी प्रथम तो रूखे-सूखे रेगिस्तान के क्षेत्रों में बहाना होगा और इसलिये पुनः पुनः एक ही प्रश्न की ध्वनि - प्रतिध्वनि आज उठ रही है - आज है कोई ऐसे दानवीर? है कोई युगवीर आचार्य ? युगाचार्य ?

आवास - सर्वप्रथम आवश्यकता : जिनाराधक वास्तुग्राम

हमारे दानवीर कर्मवीरों युगवीरों के समक्ष यह चुनौती है। अर्थाभावों एवं आवास-निवासों के अभावों में पिस पिस कर जीनेवाले साधर्मिकों को सर्वप्रथम आवास उपलब्ध कराना अब उनकी सर्वप्रथम अग्रता होनी चाहिये। साधर्मिकों में भी अग्रता किसे दी जाय इस के नियमादि निर्धारित किये जा सकते हैं, ताकि सुयोग्य जरूरतमंद व्यक्ति प्रथम चुने जा सकें। फिर इन आवास-स्थानों का वर्गीकरण अन्य प्रकार से किया जाना चाहिये - यथा, नगर बीच के एवं नगर बाहर के। उपरान्त आवासों का आद्वितीय जैन संस्कृतिमय - जैनाचारमय जैन संस्कार संवर्धनमय वातावरण एवं स्वरूप निर्मित कर उनमें बसाये जानेवाले उपर्युक्त साधर्मिक श्रावकों की आचार संहिता एवं नियमावली बनायी जानी चाहिये और इन सब का पालन करने-कर सकने वाले "सुपात्रों" को ही वहाँ स्थान दिया जाना चाहिये, जो कि स्वयं का जीवन-निर्वहन करने के साथ धर्माराधना करते हुए अन्यों को, जगत्जनों को भी सप्त कुव्यसन रहित, परिशुद्ध जैन आचार-विचार का अपने साक्षात् जीवन से उदाहरण प्रस्तुत कर सकें।

निःशुल्क, अर्धशुल्क एवं मूलदाम पर, त्रिविध प्रकार से ये जैन आवास सभी आवासहीन श्रावकों को उपलब्ध कराने का हमारे समक्ष अब समय आ चुका है - नगर बीच भी, बाहर भी। यहाँ रहने वाले श्रावक भी अपने जीवन को जैन जीवन शैली में ढालकर समाज के समक्ष एक आदर्श उदाहरण प्रस्तुत कर सकें और प्रत्येक आवासी यथाशक्ति, समाज को सेवा भी प्रदान करें, ताकि जैनोत्थान में उसका भी कुछ योगदान हो, धन से नहीं तो तन-मन से।

जिनाराधक वास्तुग्रामों के शहर बाहर के जैन आवासों का स्वरूप "आश्रमिक" ढंग का, तीर्थस्थान के निकट का एवं विशिष्ट चुने हुए आदर्श श्रावकों का और निवृत्त श्रावकों का हो सकता है, जो अन्य ढंग से अपनी आराधना करते हुए अपने साहित्य, कलादि निर्माणों - सृजनों से समाज को कुछ अर्पित कर सकें। पूर्णरूपेण विशुद्ध जैन आचार विचारमय "जैन ग्राम" जिनाराधक वास्तुग्राम हमारी आज की महत्ती आवश्यकता है।

किन्तु क्या ऐसे जैन ग्रामों, जैन आवासों के निर्माण के लिये कृतसंकल्प, निष्ठावान, जैन समाज सेवी हमारे बीच हैं ? मेरा प्रश्न पुनः पुनः उभरकर अनुगूंजित होता है - "हैं कोई ऐसे धर्मवीर -दानवीर सुश्रावक?.... है कोई ऐसे युगवीर आचार्य ??.... युगाचार्य ???..........

॥ परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥

जिनाराधक वास्तुग्राम

एक परिकल्पना

✻ वर्तमान की वास्तविकता : भविष्य की संभावना एवं परिकल्पना ✻

- प्रा. प्रतापकुमार ज. टोलिया

कैसा, कहाँ हो ऐसा जिनाराधक वास्तुग्राम?

✻ जिनाज्ञा की परिपालनापूर्ण ✻ जिनाराधना की प्रसन्न अनुपालनामय सर्व समग्र जैनार्थ, किन्तु जिनप्रतिमा - निराडंबर - पूजक ✻ किसी गच्छसंप्रदाय एवं धनदाता-आधिपत्य विहीन।

✻ प्रदूषणरहित प्रकृति बीच, ध्यान-जिनालय सहित, 'विदिशा' वास्तुस्थित, स्वयं के नीति न्यायमय, द्रव्योपार्जित (न्यायसम्पन्न वैभव युक्त) निर्माण, पूर्ण वास्तु पूर्व - उत्तर ईशान जलाशय युक्त।

✻ प्रायः तीर्थस्थान निकट, प्रशांत ग्रामप्रदेश अथवा वनप्रांतर में सूर्यप्रकाश - शुद्धवायु - शुद्धजल - उन्मुक्त आकाशादि पंचप्रकृति संपदामय।

✻ लघु कुटीर, मध्यम आवास, विशाल भवन सभी वास्तु आधारित। जिनालय - ध्यानालय - ग्रंथालय - योगालय - प्राकृतिक चिकित्सालय - "संमिलन" सभा भवन युक्त।

✻ न अधिक नगर निकट, न अधिक दूर; नगरस्थ आवास छोटे; 'निसर्गनीऽम्' - तरुतल् विद्यासत्र, सभाएँ : शांतिनिकेतन शैली में प्रकृति बीच।

✻ आत्माराधन - धर्माराधन एवं आय - साधन दोनों की क्षमता युक्त; ध्यान - योगोपासना जैन योगमार्गानुसार : आत्मध्यानमय - जिन प्रतिमा ध्यानमय।

✻ आय - साधन : अल्पारंभी व्यापार, लघु ग्रामोद्योग, कम्प्युटरादि मय, कृषि - बाग-विवेकमय; 'गोकुल' गोपालन, गायों का बाहुल्य, गृहोद्योग।

✻ साहित्य, संगीत, कलादि ऋषभानुशासन की अनेक जीवनविद्याओं युक्त आत्म केन्द्रस्थ जिनप्रणीत आत्मदर्शन, आत्मज्ञानाधारित सर्वदर्शन समन्वय अहिंसा + विज्ञान समन्वय युक्त।

✻ संगीत केवल भारतीय - 'सप्तसंगीत' युक्त - पॉप रोकादि पूर्ण निषिद्ध। टी.वी. साधन प्रायः घर घर में नहीं, एक केन्द्रीय नियंत्रित स्थान संचालित - विवेकपूर्ण सीमित चयन।

✻ योग एवं निसर्गोपचार, अल्प आयुर्वेद आधारित जीवनशैली : एलोपथी निषिद्ध, खेल केवल प्रायः भारतीय + फूटबोल आदि, कब्बड़ी आदि : क्रिकेट निषिद्ध।

✻ जिनभक्ति, जिनध्यान - आत्मध्यान, जैनविद्या विश्वविद्यालय युक्त; अहिंसा आचार - अनेकांत विचार युक्त, सप्तव्यसन त्याग युक्त, जिनपूजा युक्त परंतु आडंबर विहीन, नीति-न्याय संपन्न वैभवयुक्त एवं सब से ऊपर गच्छ-मताग्रह विहीन, आत्मलक्षी जिन साधु-साधकों के अधिक आवासमय।

जिनालय कैसा हो ?

जैन सैद्धांतिक वास्तु-स्थापत्य-शिल्पमय-(देखें 'जन जन का जैन वास्तुसार' ग्रंथ का दूसरा प्रकरण)।

विशेष में परम प्रशांतिमय, ध्यान प्रेरक जिनप्रतिमामय जो सर्व जिनमय पूज्य, 'निरंबर' एवं निराडंबर हो। दर्शन मात्र 'सर्वप्रभावक' हो। (विशेष में देखे 'जिनभक्ति की अनुभूतियाँ' लेख-पुस्तिका)

संचालक कैसे हों ?

जिनाज्ञा धारक, परम विनयी-विनम्र-विवेकी, नित्य जिनपूजक, जिन दर्शनाभ्यासी, प्रबुद्ध चिंतक, व्यवहार शुद्ध, न्यायसंपन्न द्रव्योपाजक - नीतिमय व्यापारी, समुदार, सदाचारी - निर्व्यसनी, समभावी, संभवतः निवृत्त अथवा अल्पार्जक, दानी, सुप्रसन्न, श्रावक के सर्व गुणों से युक्त। यथासंभव आग्रह-कदाग्रह-मताग्रह अहंकार शून्य खुले दिल दिमाग के, एकाधिकार - एकाधिपत्य विहीन।

संचालन (केवल 5 से 7 तक सीमित संख्या) एकाधिकार विहीन (Authority Less) सर्वानुमति युक्त। न किसी एक का आधिपत्य, न किसी का अहम् प्राधान्य; न किसी श्रेष्ठ धनपति संपत्तिवान का वर्चस्व - न दीन हीन शीलवान सहयोगी का हीनत्त्व सभी - समान, सभी का सर्वाधिकार सम्मिलित रूप से।

(इन नूतन-व्यवस्था-चिंतन हेतु पढ़े आचार्य विनोबाजी एवं श्री जे. कृष्णमूर्ति के आधुनिक विचार मंथन को एवं बेंगलोर के 'सी.एफ.एल.' Centre for Learning जैसे अभिनव विद्यासंस्था / संचालन के प्रयोगों वाला इस लेखक का लेख - 'Revolutionary Education Long Awaited')

दाता कैसा हो ?

गुप्तदानी, मूर्च्छा परिग्रह त्याग रूप नाम कामना रहित दाता - ऐसा कि पता न कि कौन दाता और कौन लेनेवाला। विनम्र, गुरुता-ग्रंथी विहीन। जिनशासन सेवा

संनिष्ठ। वस्तुपाल - तेजपाल - जगडुशाहादि वत् सर्वभाव से समर्पित, सद्गुरु आज्ञाधारक, सर्व संघ सहयोगी सन्मानदाता, साधर्मिक स्वामीवत्सल 'सर्वसंगपरित्याग' -कामी।

निवासी सर्वजन कैसे हों ?

परम विनयी, परम विनम्र, देवगुरु आज्ञाधारक - परंतु अपने उपकारक गुरु एवं अन्यों के बीच विभेद नहीं - स्नेह सन्मान सामंजस्य बढ़ानेवाले। संपन्न को न गुरुता-ग्रंथी या मद-अहंकार हो, न विपन्नों को लघुताग्रंथी या दीनभाव। सभी में एक स्वाभाव भरी खुमारी हो, मस्ती हो, साधर्मिक-स्नेह-परस्ती हो, एक दूसरे की उन्नति में सहभागिता - प्रसन्नता - अनुमोदन हो, निंदा या ईर्ष्यादि कतई नहीं। पूर्ण निर्व्यसनी सप्त व्यसनत्यागी, अल्पसंतोषी, जिनपूजाधारी, जीवन हो। सभी की सेवा सुश्रुषा विनय व्यवहारादि समग्र श्रावकगुणों से युक्त हो। अन्य धर्मीजनों - अन्य समाजों पर भी अपना जिनधर्म-प्रभाव छोड़ने वाला जीवन व्यवहार हो। सर्वोदयी, पक्षातीत, जिसका राजनैतिक अभिमत अहिंसा - अनेकांत पोषक हो।

सर्वोपयोगी वास्तुग्राम की परिकल्पना - सर्वोदय तीर्थ

इस ग्रंथ में 'जिनाराधक वास्तुग्राम' की प्रस्तुत की गई नूतन परिकल्पना अनेक धर्मों, अनेक साधना मार्गों, अनेक रूपों में अपनी अपनी आवश्यकतानुसार कार्यान्वित की जा सकती है।

सर्व साधना-दर्शनों, सर्व सामान्य जन-स्वरूपों, सर्व-धर्म समन्वय अभिगमों में शुद्धाचरण एवं अध्यात्म की नींव पर विज्ञान को जोड़ते हुए प्रकृति के पंच महाभूतों का एक सुंदर विनियोग ऐसे सर्वोदय तीर्थ वास्तुग्राम में किया जा सकता है।

ऐसे वास्तुग्राम अलग-अलग संकुलों के रूप में स्थान स्थान, गाँव गाँव, शहर शहर के बाहर सर्व-प्रदूषण-रहित वास्तु-परीक्षित स्वतंत्र भूखंडों पर निर्मित किये जा सकते हैं - वास्तुविज्ञान के निसर्ग-नियमों के साथ, उन्मुक्त नैसर्गिक वातावरण में, जो कि शरीर के साथ मन-आत्मा को भी स्वास्थ्य एवं ऊर्ध्वीकरण प्रदान करते हों। ऐसे प्रकृति-पल्लवित शांत-प्रशांत 'निसर्गधाम-वास्तुग्राम' धरती पर सात्विक स्वर्ग की झलक दे सकते हैं।

अनेकों में से कुछ दृष्टांतरूप प्रशांत, प्रेरक वास्तु आधारित निर्माणों-स्थानों में क्या आपने प्रथम आत्मस्वरूप में प्रशांत, ध्यानस्थ, उत्तर-मुख एवं नीचे विंध्यगिरितलपर जलाशययुक्त श्रवणबेलगोल की विराटकाय बाहुबली प्रतिमा को स्वयं भी ध्यानलीन होकर नहीं देखा? . . . क्या आपने प्राकृतिक पर्वतिकाओं के बीच बसे राणकपुर के प्रशांत तीर्थधाम में, नीरव रात्रि में कभी आकाश के तारों के नीचे बैठकर प्रशमरस पूर्ण जिनप्रतिमा के दर्शन का आनंद नहीं उठाया? . . . क्या आपने बेंगलोर नगर के बाहर ही बसे विश्वप्रसिद्ध निसर्गधाम 'निंदल नेचर क्योर इन्स्टीट्यूट' में प्रकृतिमैया का सान्निध्य पाकर तन-मन-आत्मा का स्वास्थ्य कभी नहीं संजोया, जो कि महर्षि अरविंद की परिकल्पना के 'धरती पर उतर आए दिव्यलोक' को एवं श्रीमद् राजचंद्रजी की आर्ष-भावना के सात्विक, सप्तव्यसनरहित, सात्विक स्वर्ग का ही साक्षात्कार कराता है ?

कितने कितने उदाहरण दें - पाँडिचेरी का 'ऑरोविले', श्री जे. कृष्णमूर्ति का विद्याधाम 'ऋषि वॅली स्कूल', उरली कांचन-पूना का महात्मा गाँधीजी द्वारा संस्थापित निसर्गोपचार आश्रम, अहमदाबाद के गुजरात विद्यापीठ एवं साबरमती आश्रम, घाटकोपर-मुंबई का सर्वोदय अस्पताल, चैतन्य कश्यप फाउन्डेशन का अहिंसाग्राम, हैदराबाद का अभिराम एपार्टमेन्ट, आदि आदि अनेक।

इन सभी आदर्शरूप प्रत्यक्ष उदाहरणों एवं हमारे ग्रंथ निष्कर्षों से प्रेरित होकर, इस ग्रंथ में विस्तार से वर्णित 'जिनाराधक वास्तुग्राम' की परिकल्पना से प्रभावित होकर, ऐसे सात्विक सप्तव्यसन-रहित, नैसर्गिक, प्रकृति-पल्लवित, अध्यात्म की नींव पर आधारित वास्तुग्रामों के सर्वत्र निर्माणों की दृढ भावना-संकल्पना किसी भव्यात्मा में समुत्पन्न होगी?

नवकार महामंत्र - वास्तुदोष निवारण मंत्र

प्रातः ब्राह्म मुहूर्त / सूर्योदय समय (६ से ७ के बीच) पठनीय अपने अपने गृहों / स्थानों के सर्व दिशाओं के वास्तुदोषों के निवारण हेतु पंचपरमेष्ठी नवकार मंत्र एवं जिनधर्म-श्रुत-चैत्य-चैत्यालय अभिवंदना।

(प्रत्येक मंत्र का एक बार पाठ कर अक्षत अंजलि अर्पित करें।)

ॐ णमो अरिहंताणं।*

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं अर्हत् परमेष्ठिने नमः।

मध्यदिशा वास्तुदोष निवारणं अक्षयपद सुखप्राप्त्यै अक्षतं निर्वपामि स्वाहा।

ॐ णमो सिद्धाणं।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं सिद्धेभ्यः नमः।

पूर्वदिशा वास्तुदोष निवारणं अक्षयपद सुखप्राप्त्यै अक्षतं निर्वपामि स्वाहा।

ॐ णमो आयरियाणं।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं आचार्येभ्यः नमः।

दक्षिणदिशा वास्तुदोष निवारणं अक्षयपद सुखप्राप्त्यै अक्षतं निर्वपामि स्वाहा।

ॐ णमो उवज्झायाणं।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं उपाध्यायेभ्यः नमः।

पश्चिमदिशा वास्तुदोष निवारणं अक्षयपद सुखप्राप्त्यै अक्षतं निर्वपामि स्वाहा।

ॐ णमो लोए सव्वसाहूणं।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं सर्वसाधुभ्यो नमः।

उत्तरदिशा वास्तुदोष निवारणं अक्षयपद सुखप्राप्त्यै अक्षतं निर्वपामि स्वाहा।

ॐ श्री जिनधर्मेभ्यो नमः।

वायव्यदिशा वास्तुदोष निवारणं अक्षयपद सुखप्राप्त्यै अक्षतं निर्वपामि स्वाहा।

ॐ श्री जिनश्रुतेभ्यो नमः।

ईशान्यदिशा वास्तुदोष निवारणं अक्षयपद सुखप्राप्त्यै अक्षतं निर्वपामि स्वाहा।

ॐ श्री जिनचैत्येभ्यो नमः।

आग्नेयदिशा वास्तुदोष निवारणं अक्षयपद सुखप्राप्त्यै अक्षतं निर्वपामि स्वाहा।

ॐ श्री जिनचैत्यालयेभ्यो नमः।

नैऋत्यदिशा वास्तुदोष निवारणं अक्षयपद सुखप्राप्त्यै अक्षतं निर्वपामि स्वाहा।

शुद्ध वस्त्र, शुद्ध भाव, शुद्ध स्थान में श्रद्धापूर्वक प्रातःकाल अक्षत-अंजलि सह केवल एक-एक बार यह स्मरण-वंदना पाठ करने से स्पष्टरूप से सर्व वास्तुदोष नष्ट हो जाते हैं।

-- ज्योतिषी रत्नाकर, ज्योतिषरत्न पं एम्. रत्नराज जैन

Ph. (080) 6565 2644 (M) 99453 50586

*'णमो' मूल प्राचीन उच्चारण है। 'नमो' का प्रयोग भी प्रचलित है।

इस ग्रंथ के श्रुतज्ञान - सुकृत सहयोगी अग्रिम आरक्षकों की शुभ नामावली

1. श्री अशोकभाई जसराजजी संघवी, बेंगलोर - 25 प्रति - रु. 5555/-
2. श्री चन्द्रकुमार जसराजजी संघवी, बेंगलोर - 5 प्रति - रु. 1111/-
3. श्रीमती त्रिशलाबहन महेन्द्रकुमारजी चोपड़ा, बेंगलोर - 5 प्रति - रु. 1111/-
4. श्री शा बस्तीमल भानाजी चोपड़ा, बेंगलोर - 5 प्रति - रु. 1111/-
5. श्रीमती ललिताबहन राजेन्द्रकुमारजी कोठारी, बेंगलोर - 5 प्रति - रु. 1111/-
6. श्रीमती संजनाबहन अशोककुमारजी, बेंगलोर - 5 प्रति - रु. 1111/-
7. श्रीमती धाकुबाई द्वारा श्री अनिलभाई जैन, बेंगलोर - 5 प्रति - रु. 1111/-
8. श्री लालचन्दजी एवं श्री लब्धिचन्दजी बाफना, बेंगलोर - 5 प्रति - रु. 1111/-
9. श्री छगनलालजी राठौड़, बेंगलोर - 5 प्रति - रु. 1111/-
10. श्रीमती गजराबाई द्वारा श्री उत्तमचन्दजी सुराणा, बेंगलोर - 5 प्रति - रु. 1111/-
11. श्री कुशलराजजी चन्दनमलजी वैदमुथा, बेंगलोर - 5 प्रति - रु. 1111/-
12. मे. मैसूर पाईप सप्लायर्स, बेंगलोर - 5 प्रति - रु. 1111/-
13. मे. महावीर ग्लास हाऊस, बेंगलोर - 5 प्रति - रु. 1111/-
14. श्री प्रकाशजी कोठारी, यलहंका, बेंगलोर - 5 प्रति - रु. 1111/-
15. श्री पुशालालजी नाहर, बेंगलोर - 5 प्रति - रु. 1111/-
16. श्रीमती ललिताबहन ललितजी, बेंगलोर - 5 प्रति - रु. 1111/-
17. श्री खेमचन्दजी जैन, बेंगलोर - 3 प्रति - रु. 701/-
18. श्री उत्तमचन्दजी पारसमलजी मिश्रीमलजी, बेंगलोर - 2 प्रति - रु. 301/-

इस ग्रंथ के श्रुतज्ञान - सुकृत सहयोगी अग्रिम आरक्षकों की शुभ नामावली

19. श्रीमती त्रिशला बहिन गौतमचन्दजी, बेंगलोर	- 5 प्रति	- रु.1111/-
20. श्री नथमलजी जैन, जी.बाबुलाल एण्ड कं., बेंगलोर	- 5 प्रति	- रु.1111/-
21. कु. गीतांजलि शंकरराव जैन, बेंगलोर	- 5 प्रति	- रु.1111/-
22. मे. प्रवीण मेटल कॉर्पोरेशन, बेंगलोर	- 5 प्रति	- रु.1111/-
23. श्री रतनचन्दजी हरखचन्दजी पालरेचा, होसपेट	- 5 प्रति	- रु.1111/-
24. श्री नरेशकुमारजी नवलचन्दजी टोलिया, मुम्बई	- 5 प्रति	- रु.1111/-
25. श्री भरतकुमारजी मिश्रीमलजी भोजाणी, बेल्लारी	- 5 प्रति	- रु.1111/-
26. श्रीमती त्रिशलाबहन तेजराजजी कोठारी, बेंगलोर	- 5 प्रति	- रु.1111/-
27. श्री कान्तिलालजी कुहाड़, बेंगलोर	- 5 प्रति	- रु.1111/-
28. श्रीमती ललिताबहन अशोकजी नागोरी, बेंगलोर	- 5 प्रति	- रु.1111/-
29. श्री राजेश ललवाणी, बेंगलोर	- 5 प्रति	- रु.1111/-
30. श्री दिलीपकुमार केशुभाई महेता एवं मित्रवृंद, मुंबई	- 25 प्रति	- रु.5555/-
31. एक साधर्मिक बन्धु, बेंगलोर	- 5 प्रति	- रु.1111/-
32. श्री शांतिलाल मिश्रीमलजी गादिया, बेंगलोर	- 5 प्रति	- रु.1111/-
33. श्रीमती प्रसन्नाबहन विजयराजजी जैन, बेंगलोर	- 5 प्रति	- रु.1111/-
34. श्री अशोककुमारजी जैन, (आनंदमगंल) बेंगलोर	- 2 प्रति	- रु.501/-

अहिंसा, अनेकांत और आत्मविज्ञान की प्रसारक संस्था

श्री वर्धमान भारती - जिनभारती : प्रवृत्तियाँ और प्रकाशनादि

बेंगलोर में 1971 में संस्थापित 'वर्धमान भारती' संस्था आध्यात्मिकता, ध्यान, संगीत और ज्ञान को समर्पित संस्था है। प्रधानतः वह जैनदर्शन का प्रसार करने का अभिगम रखती है, परंतु सर्वसामान्य रुप से हमारे समाज में उच्च जीवनमूल्य, सदाचार और चारित्र्यगुणों का उत्कर्ष हो और सुसंवादी जीवनशैली की ओर लोग मुड़ें यह उद्देश रहा हुआ है। इसके लिये उन्होंने संगीत के माध्यम का उपयोग किया है। ध्यान और संगीत के द्वारा जैन धर्मग्रंथों की वाचना को उन्होंने शुद्ध रुप से कैसेटों में आकारित कर ली है। आध्यात्मिक भक्तिसंगीत को उन्होंने घर-घर में गुंजित किया है। इस प्रवृत्ति के प्रणेता है प्रो. प्रताप टोलिया। हिन्दी साहित्य के अध्यापक और आचार्य के रुप में कार्य करने के बाद प्रो. टोलिया बेंगलोर में पद्मासन लगाकर बैठे हैं और व्यवस्थित रुप से इस प्रवृत्ति का बड़े पैमाने पर कार्य कर रहे हैं। उन की प्रेरणामूर्तिओं में पंडित सुखलालजी, गांधीजी, विनोबा जैसी विभूतियाँ रहीं हुई हैं। ध्यानात्मक संगीत के द्वारा अर्थात् ध्यान का संगीत के साथ संयोजन करके उन्होंने धर्म के सनातन तत्त्वों को लोगों तक पहुँचाने का प्रयत्न किया। श्री प्रतापभाई श्रीमद् राजचन्द्र से भी प्रभावित हुए। श्रीमद् राजचन्द्र के 'आत्मसिद्धि शास्त्र' ✻ आदि पुस्तक भी उन्होंने सुंदर पठन के रुप में कैसेटों में प्रस्तुत किये। जैन धर्मदर्शन केन्द्र में होते हुए भी अन्य दर्शनों के प्रति भी आदरभाव होने के कारण प्रो. टोलिया ने गीता, रामायण, कठोपनिषद् और विशेष तो ईशोपनिषद् के अंश भी प्रस्तुत किये। 1979 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई ने इस रिकार्ड का विमोचन किया था। प्रो. टोलिया विविध ध्यान शिविरों का आयोजन भी करते हैं।

प्रो. टोलिया ने कतिपय पुस्तक भी प्रकाशित किये हैं। श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, हंपी के प्रथम-दर्शन का आलेख प्रदान करनेवाली 'दक्षिणापथ की साधनायात्रा' हिन्दी में प्रकाशित हुई है। 'मेडिटेशन एन्ड जैनिझम', 'अनन्त की अनुगूँज' काव्य, 'जब मुर्दे भी जागते हैं!' (हिन्दी नाटक), इ. प्रसिद्ध हैं। उनके नाटकों को सरकार के पुरस्कार भी मिले हैं। 'महासैनिक' यह उनका एक अभिनेय नाटक है जो अहिंसा, गांधीजी और श्रीमद् राजचन्द्र के सिद्धांत प्रस्तुत करता है। काकासाहब कालेलकर के करकमलों से उनको इस नाटक के लिये पारितोषक भी प्राप्त हुआ था। इस नाटक का अंग्रेजी रुपांतरण भी प्रकट हुआ है। 'सहजात्मगुरु प्रवचन' में श्री सहजानंदधन की आत्मानुभूति प्रस्तुत की गई है।

प्रो. टोलिया का समग्र परिवार इस कार्य के पीछे लगा हुआ है और मिशनरी के उत्साह से काम करता है। उनकी सुपुत्री ने 'Why Vegetarianism?' यह पुस्तिका प्रकट की है। बहन वंदना टोलिया लिखित इस पुस्तिका में वैज्ञानिक पद्धति से शाकाहार का महत्त्व समझाया गया है। उनका लक्ष्य शाकाहार के महत्त्व के द्वारा अहिंसा का मूल्य समझाने का है। समाज में दिन-प्रतिदिन फैल रही हिंसावृत्ति को रोकने के लिये किन किन उपायों को प्रयोग में लाने चाहिये उसका विवरण भी इस पुस्तिका में मिलता है।

उनकी दूसरी सुपुत्री पारुल के विषय में प्रकाशित पुस्तक **'Profiles of Parul'** देखने योग्य है। प्रो. टोलिया की इस प्रतिभाशाली पुत्री पारुल का जन्म 31 दिसम्बर 1961 के दिन अमरेली में हुआ था। पारुल का शैशव, उसकी विविध बुद्धिशक्तियों का विकास, कला और धर्म की ओर की अभिमुखता, संगीत और पत्रकारिता के क्षेत्र में उसकी सिद्धियाँ, इत्यादि का उल्लेख इस पुस्तक में मिलता है। पारुल एक उच्च आत्मा के रुप में सर्वत्र सुगंध प्रसारित कर गई। 28 अगस्त 1988 के दिन बेंगलोर में रास्ता पार करते हुए सृजित दुर्घटना में उसकी असमय करूण मृत्यु हुई। पुस्तक में उसके जीवन की तवारिख और अंजलि लेख दिये गये हैं। उनमें पंडित रविशंकर की और श्री कान्तिलाल परीख की **'Parul - A Serene Soul'** स्वर्गस्थ की कला और धर्म के क्षेत्रों की संप्राप्तियों का सुंदर आलेख प्रस्तुत करते हैं। निकटवर्ती समग्र सृष्टि को पारुल सात्त्विक स्नेह के आश्लेष में बांध लेती थी। न केवल मनुष्यों के प्रति, अपितु पशु-पक्षी सहित समग्र सृष्टि के प्रति उसका समभाव और स्नेह विस्तारित हुए थे। उसका चेतोविस्तार विरल कहा जायेगा। समग्र पुस्तक में से पारुल की आत्मा की जो तस्वीर उभरती है वह आदर उत्पन्न करानेवाली है। काल की गति ऐसी कि यह पुष्प पूर्ण रुप से खिलता जा रहा था, तब ही वह मुरझा गया! पुस्तक में दी गईं तस्वीरें एक व्यक्ति के 27 वर्ष के आयुष्य को और उसकी प्रगति को तादृश खड़ी करती हैं। पुस्तिका के पठन के पश्चात् पाठक की आंखें भी आंसुओं से भीग जातीं हैं। प्रभु इस उदात्त आत्मा को चिर शांति प्रदान करो।

'वर्धमान भारती' गुजरात से दूर रहते हुए भी संस्कार प्रसार का ही कार्य कर रही है वह समाजोपयोगी और लोकोपकारक होकर अभिनन्दनीय है।

- डॉ. रमणलाल जोशी
(सम्पादक, 'उद्देश')

'त्रिवेणी'
लोकसत्ता - जनसत्ता,
अहमदाबाद, 22-03-1992.

*** इसीका सात भाषाओं में श्रीमद् राजचन्द्रजी कृत 'सप्तभाषी आत्मसिद्धि' रुप संपादित - प्रकाशित।**

जिनभारती

वर्धमान भारती इन्टरनेशनल फाउण्डेशन के महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

'प्रियवादिनी स्व. कु. पारुल टोलिया द्वारा लिखित - संपादित - अनुवादित

* दक्षिणापथ की साधनायात्रा (हिन्दी) प्रथमावृत्ति पूर्ण (ऑडियो बूक सीडी)
* महावीर दर्शन (हिन्दी) Mahavir Darshan (Eng + Hindi) (Audio Book CD)
* विदेशों में जैन धर्म प्रभावना (हिन्दी) Jainism Abroad.
* Why Abattoirs - Abolition ? (Eng)
* Contribution of Jaina Art, Music and Literature to Indian Culture.
* Musicians of India - I came across : Pt. Ravishankar,etc.
* Indian Music and Media (Eng)
* Profiles of Parul (Eng)
* पारुल - प्रसून (पुस्तिका तथा सीडी)

प्रा. प्रतापकुमार टोलिया द्वारा लिखित - संपादित - अनुवादित

* श्री आत्मसिद्धिशास्त्र एवं अपूर्व अवसर - द्विभाषी
* सप्तभाषी आत्मसिद्धि - श्रीमद् राजचन्द्रजी कृत - सात भाषाओं में अंग्रेजी - हिन्दी भूमिका सह.
* पंचभाषी पुष्पमाला
* दक्षिणापथ की साधनायात्रा (गुजराती) प्रथमावृत्ति पूर्ण
* विदेशों में जैन धर्म प्रभावना (गुजराती)
* महासैनिक (म. गाँधीजी एवं श्रीमद् राजचन्द्रजी विषयक)
* The Great Warrior of Ahimsa.
* प्रज्ञाचक्षु का दृष्टिप्रदान - पं. सुखलालजी के संस्मरण (गुज)
* स्थितप्रज्ञ के साथ - आचार्य विनोबा भावे सह पदयात्रा संस्मरण
* गुरुदेव के संग - रवीन्द्रनाथ ठाकुर के विषय में आचार्य गुरुदयाल मल्लिकजी आधारित
* प्रकटी भूमिदान की गंगा - विश्वमानव (रेडियो रूपक)
* जब मुर्दे भी जागते हैं ! - पुरस्कृत, अभिनीत हिन्दी नाटक
* संत शिष्य की जीवन सरिता
* कर्नाटक के साहित्य को जैन प्रदान
* Jain Contribution to Kannada Literature & Culture.
* Meditation and Jainism.
* Speeches and talks in USA and UK.
* Bhakti Movement in North.
* Saints of Gujarat.
* Jainism in present age.
* My Mystic Master Y.Y. Shri Sahajanandaghanji
* Holy Mother of Hampi.
* Award, Bribe Master, Public School Master & Other Stories
* Himalayan Betrayal & Other Stories
* Why Vegetarianism ?
* Voyage Within With Vimalajee.

(अनुसंधान-अंतर्पृष्ठ-2 से)

- ✲ अंतर्यात्रा - विमल सरिता सह
- ✲ दाण्डीपथने पगले-पगले - गाँधी शताब्दी दाण्डी यात्रा के अनुभव (गुजराती)
- ✲ अमरेली से अमेरिका तक - जीवन यात्रा
- ✲ पावापुरी की पावन धरती पर से (आर्ष-दर्शन)
- ✲ मेरे मानस लोक के महावीर
- ✲ कीर्ति-स्मृति- पारूल स्मृति (दिवंगत अनुज एवं आत्मजा की स्मृतियाँ)
- ✲ एक क्रान्तिकार की करूण कथा
- ✲ जिन भक्ति की अनुभूतियाँ
- ✲ दुखायलजी सह सर्वोदय संगीत यात्रा
- ✲ जैन योग पथ : योग संकेतिका : ध्यान संगीत
- ✲ ॲवॉर्ड कहानी संग्रह - गुजराती / हिन्दी
- ✲ गीत निशान्त - काव्य गीत - हिन्दी
- ✲ वेदन-संवेदन (काव्य) - गुजराती
- ✲ पराशब्द (निबंध) - हिन्दी
- ✲ अंतर्दर्शी की अंगुलि पर - स्मरण कथा (गुजराती)

शताधिक में से कुछ महत्त्वपूर्ण सी.डी., कॅसेट्स

श्रीमद् राजचन्द्र साहित्य :	सर्वसुलभ जैन साहित्य :
1. श्री आत्मसिद्धि शास्त्र - अपूर्व अवसर	1. श्री भक्तामर/कल्याण मंदिर स्रोत्र
2. परमगुरुपद (यम-नियम आदि)	2. श्री ऋषिमण्डल/परमानन्द स्रोत्र
3. राजपद(विनानयन,हे प्रभु!आदि) राजवाणी	3. मंगलाष्टक - वृहद्शांति, ग्रह शांति
4. भक्ति-कर्त्तव्य (अन्य भक्तिपद)	4. आसरा-आराधना
5. भक्ति झरणां (राजभक्ति+मातृ स्वाध्याय)	5. जय जिनेश, जिनेश्वर आरती
6. ध्यान संगीत (गुज.आ.जनकचंद्रसूरि सह)	6. जिन वंदना, जिनेन्द्र दर्शन
7. ध्यान संगीत - आनंदलोके अंतर्यात्रा	7. दादा गुरु दर्शन / दिवाकर दर्शन
8. धून-ध्यान (नवकार मंत्र,सहजात्मस्वरूप)	8.महायोगी आनंदघन के पद/अनुभव वाणी
9. परमगुरुप्रवचन,कल्पसूत्र,दशलक्षण (भद्रमुनि)	9. आत्म खोज, अभीप्सा
10.बाहुबली दर्शन(बाहुबलीजी-श्रीमद्जी-गाँधीजी)	10.आध्यात्मिक गीत गजल
11. महावीर-दर्शन (श्रीमद् राजचन्द्र-तत्त्व आधारित)	11. अवसर बेर-बेर नहीं आवे
12. प्रभात मंगल, जैन सुप्रभातम्	12. अमेरिका की त्रिविध-यात्रा
13. सहजानंदसुधा (राजभक्तिपद-सहजानंदजी कृत)	13. स्पन्दन-संवेदन
14. महाप्रभाविक नवस्मरण (1,2)	14.गिरनारजी सिद्धक्षेत्र /राजुल-चंदनबाला
15. रत्नाकर पच्चीसी (हिन्दी-गुजराती)	15. सोनागिर - दश लक्षण, रत्नत्रय कथा

ऑडियो बुक, वी.सी.डी., डी.वी.डी., डॉक्यूमेंट्री-फिल्म्स इत्यादि -

- ✲ दक्षिणापथ की साधना यात्रा (ऑडियो बुक)
- ✲ प्रारूल प्रसून (ऑडियो बुक)
- ✲ अनंत की अनुगूंज (ऑडियो बुक)
- ✲ बाहुबली दर्शन (H,K,E) - वी.सी.डी., डी.वी.डी.
- ✲ भारत में संगीत कार्यक्रम (पूना,दिल्ली,कोबा, बेंगलोर
- ✲ विदेशों में संगीत कार्यक्रम (बेंबली-लंदन, अमेरिका)

सम्पर्क : जिनभारती, प्रभात कॉम्पलेक्स, के.जी.रोड, बेंगलोर - 560 009. (फोन: 080-26667 882/ 2225 1552/ 96112315
E-mail : vardhamanbharti@yahoo.com / prataptoliya@bsnl.com

Is Vaastu the Cure?
Why Things Go Wrong?

Vaastu *is not* a "modern form of supersition", but is a science with a ound, scientific, mathematical, environmental, natural, life-enriching-ubliming way of living. It's an Architectural Art, developed after deep hinking and studies since ages, since time immemorial. It should not be "largely a matter of individual choice". It is also of collective, public choice f the masses, for common good, for suffering mankind (being one of its mportant cures), meant for the haves, have nots, and all.

The wise, learned, soundly-advised, character-clean, integrated ublic-welfare-craving compassionate, far-sighted Kings of the past, like Rishabhadeva, Bharata, Janaka Videhi, Rama, Shrenik, Bimbisara, Ajatashatru, Chandragupta, etc., followed Vaastu-based Town Planning nd Architecture for their structures—not only for their Palaces (Raj-rasadas), but also for buildings of public utility and commoners' esidences.

King Rishabhadeva (Tirthankara Adinatha), the Father of Human Culture and Lord Bahubali, was the Pioneer originator of 72 & 64 Human Life-Sciences included Vaastu Shastra Architecture also, which he taught to s kingly sons Bharata-Babhubali and learned daughters Brahmi-Sundari. Mostly lost and scarcely available Jain Scriptures-Books like Rayapaseniya" (kingly dialogues), "Dharmabindu", "Arambh-siddhi" d lately Prakrit "Vaastu Prakarana Sara" (8th Century) by Jain Author hakkar Feru and "Jaina Art & Architecture" (1974 : Bharatiya Jnanapith) e a few examples. World-wonders Ranakpur, Dilwara Jain Temples onstructed by two sacrificial Minister-brothers Vastupala-Tejpala) in the orth and Sravanabelagola in the South are monumental evidences of ove-claimed Vaastu-based planning. Even right before us the Bangalore dhana Soudha, a "Vidisha" Vaastu Block Building is evidence.

Indeed, Vaastu is one of the necessary cures, along with several other siderations, for the suffering of humanity, if implemented with deep egrated studies, discretion, reasoning, and integrity of the implementor. s calls for selfless sacrificial spirit having its root in high ethical and ritual standards of Truth, Non-Violence, Non-accumulation of Wealth, mpassion in heart and action for Public Welfare like the Great mpassionate Kings quoted hereabove and others and not at all for sonal or political gains.

Question is : Whether the Modern present Day Indian Minister possesses such essential qualities? A minister can and cannot champion the cause of such a great, serious, science and art of vaastu. If unworthy of above-marked qualities in him, things can go wrong because of his wrong unreasonsed, faulty calculations and one-sided thinking-planning blended with his stray, self-publicity-centered or political motives lacking public concern and compassion.

It should also be understood that Vaastu cannot be applied everywhere, nor can it be blamed for one's own shortcomings, blunders, lack of insight and integrity.

Prof. Pratapkumar J. Toliya

Bangalore
10-10-2003

Vaastu: How and Why a Science and Not a Superstition?

Architectural Vastu is a healthy combination of Art and Science. There is no room in it for superstitions and vague forebodings as is sometime assumed without understanding and studying it in proper perspectives. Such an assumption is mostly based on prejudicies, wrong information and conditioning of mind without having openness to study the subject in its wholeness and integration scientifically.

Principles of Vastu and Architecture are based on Five elements of Nature namely Earth, Water, Fire, Air and Sky with their proper usage, application, prescription, presentation and placement. Whole of this process goes in factual and actual way of Cosmic Nature's principles. There is no place for poetic imagination, superstition or even Astrological forecasts (the *falita*) in Vastu. Its scientific aspect lies in its being exactly and factually Mathematical. It prescribes Nature's clear laws. Say, if you drive your vehicle on wrong side (Right Hand Drive in India in place of the Left Hand one and Left Hand Drive in USA, the vice-versa) then what will happen...? Accident, or anything else.........?

Similarly, if you place the above mentioned five elements of Nature in wrong places of your house or premises, what will happen...? The results will be obvious and mathematical. This has been proved through experiments, since times immemorial, since ages and in all countries irrespective of Space and Time! Hence, Vaastu principles are immensely Universal, Mathematically factual and Scientific.

Taking this into consideration, we shall only glance some of the main of the 8 corners-directions and 9th Middle portion of a premises are as per the Vastu Chart and its Explanations given on page Nos.16 & 17 of this Book. They are roughly outlined in brief in the following sketch for easy understanding and ready reference:-

E: East direction having element of Earth, has property of harmony.

NE: North East Corner of a House is called "*Deva Moola*", meaning the place for God and God's worship, for prayers and for meditation. Right will-power, vibrations will generate from here. This pious place should be utilized in tranquility for such holy purposes, which will bring elevation and success in life. This has been tested beyond times. Unholy usage of this corner, such as cooking and placing here Kitchen, Toilet, Bedroom, etc., has proved dangerous and brought downfall to several ignorant or non-believing residents. One of several examples that I have come across will be sufficient to prove its authenticity and correctness. This is based on absolute self-experience and observation, in course of my Vaastu Consultation at home and abroad. It happened thus:

I was on my 11th USA Tour and had re-visited Siddhachalam in New Jersey's Blairstown. I had left my whereabouts and telephone contact number over there during that visit.

Getting a clue from this, my remotely-acquainted friend Mr. Shah ontacted me, told me of all his pathetic woes and happenings of last seven ears, summing up in his current diseased condition of Cancer and invited e to visit his New Jersey home and help him out. Seeing the urgency of his rious case, I immediately went to his place along with my Vaastu mpass. On way to his home I was just supposing possibility of something ong in his house's North East Corner. Hence, as I reached over there, my astu Compass immediately found it out and testified my doubt : agically, the root cause of all the ills of Mr. Shah was here – THE TOILET MMODE EXACTLY IN THE NORTH EAST CORNER!

"Since, how many years are you staying in this house?" I asked my nd Mr. Shah.

"Since seven years. After purchasing this house and commencing our over here, all sorts of difficulties and downfall started: Loss of Service, inning of sickness, gradually developing into Cancer, which was

detected at this very late stage…and what not….! Please show me the way to come out, give me some Mantra…"

So saying both Mr. Shah and his wife were in tears….I warmly consoled them and tried to provide solace:

"Your First Mantra to be followed is to immediately close down this North East Commode….It is the root of all your evils…. Please act without any loss of time…"

He soon sealed the commode in my presence, since he luckily had another one in his home. Later he got it demolished also. But his ailment of Cancer was too much advanced. However I advised him sympathetically to take rest and relaxation with meditative Mantras of NAMOKAR. I prayed the Great Masters for his recovery and left the place promising him to visit soon again. When I went to him shortly again, he was hospitalised. His son took me there. I had carried with me Holy Literary Writings of Paramaguru Srimad Rajachandraji, which I gave him at the Hospital with an instruction to constantly and simultaneously read and contemplate along with the Mantra Chantings, which he rigorously followed. I prayed there and left.

With the Masters' Divine Grace, he was saved from undergoing the prescribed risky Cancer Operation Surgery, he started recovering and returned home safely. He and his wife both got jobs, part time and full time respectively. All due to the Masters' grace and rectification of the Vaastu faults, Thank God…! Then this couple invited me for Lunch before I return to India and I was happy to see that God and Vastu both had helped him.

Without adding more examples of this type which I personally came across, I shall like to quote a very recent News item that appeared in Bangalore's "DECCAN HERALD" dated 07-08-2009, which carried the title and runs as under:

"Vastu-compliant Electioneering in Ramanagaram"

"Maralavadi is candidates' preferred hobli to kickstart campaigning… Reason: the hobli, according to Vastu Shastra, is positioned at God's Corner (Deva Moole) of the constituency. Vastu Shastra defines the corner, which is sacred. Maralavadi hobli enjoys this sacred position in the constituency… Asked why he choose Maralavadi to launch the campaign, a candidate said, "We have faith in vastu practice and we follow it...we believe if we start our campaign from God's corner (*deva moole*) we will succeed."

To sum up: The North East Corner in Vastu enjoys importance. Our

Vastu Chart which appears earlier in the book, in its explanation (Page 16-17) prescribes, in addition to Prayer Place Deity Room, only the following usage of it : Well, Water Sump (Underground tank, not overhead tank here), Bore-well, Door, Gate, Verandah, Drawing Room, Car Portico and Cellar….and NOT AT ALL Toilet, Kitchen, Bed Room, etc., as discussed and clarified earlier.

Importance of the North East "*deva moole*" From Jain Vaastu point of view

As regards the position and importance of the North East place either in one's home/work premises or in our nation India's topography, it enjoys prime supremacy.

1. Jain Cosmology, Philosophy, faith and Live experience of Great Past and Present Seers all specify the existence of another Cosmic Divine World called "Mahavideha Kshetra", which is again divided in four gigantic areas in its North, East, South, West directions and is occupied by Present Day Arihantas along with Kevalajnani and other disciples. This Mahavideha Kshetra, only approached by realized sublime souls through their rare astro-flying Spiritual Voyage, is different and separate in this vast cosmos, which consists of Bharata Kshetra, i.e., India also. Direction of said Mahavideha Kshetra lies in the North East of Bharata Kshetra, India. Mahavideha is sacred Divine Land, so to say God's Land, the Deva Moole in right sense of the word. For every devout Jain Aspirant, it is the holiest place next to the Supreme Siddha Shila — the eternal Abode of the Siddha Paramatmas. Hence, the Jain Aspirant daily bows to these Siddha Paramatmas of Siddha Shila and Arihant Paramatmas (viharman Jina Visa) of Mahavideha Kshetra.

In short, the Mahavideha Kshetra situated in the directions of North East, is a Holy Place of Worship even if far and far away from this Bharat Kshetra, or present day India. We worship here perfect vaastu-shilpa based Teerthas Abu-Dilwara, Ranakpur, Shatrunjaya, Girnar etc. in the West, Sammed Shikharji in North East and Shravanabelagola and Moodabidri in the South.

One can imagine, how much importance and significance this Deva Moole North East direction bears for a Jain Sadhaka.

2. In Bharata Kshetra, India, 20+2 out of 24 Arihant Tirthankaras, particularly the last two Parswanath and Mahaveera, wandered spreading their Dharmachakra and ultimately attained NIRVANA in North East part of

India at Sammed Shikhar (Parswanath Hills), Champapuri and Pavapuri in Bihar. They moved throughout in Bihar, Bengal, Assam, etc., (See Article Series with latest research, titled, "Varan Bhoomi Bengal" by scholar Smt. Lata Bothra in "Titthayar" monthly of Kolkata). Deep research is awaited in the aspect which will reveal these Tirthankaras' impact and influence in whole of North East region from Bihar to Arunachala Pradesh and even Nepal. Numerous historical places of their Viharas, Pada Yatras stand testimony of this and yet much more research is in waiting. Briefly, the impact of these Tirthankaras consisted of not only religious teachings and pure moral life, but also of awareness full trade and agriculture, Animal Protections through vast Gokulas and imbibing of all the 72 and 64 Life Sciences and Arts of Men and Women taught by the First Jain Tirthankara Adinatha Rishabhadeva, the Illustrious Father not only of Chakravarti King Bharata and Mighty Bahubali, but also of Human Culture and Civilisation on Earth.

Implementation of all these Cultural Arts' heritage along with the principles of Ahimsa, Anekanta, Atmajnana, etc., was carried out on large scale uplifting ignorant humanity by Tirthankara Mahaveera, Parswanatha and their predecessors, travelled and wandered all over India, Middle East, Greece and whole world, but beginning from this significant and sacred North East part of Bharatakshetra - India.

Can one imagine, how much this North East direction enjoys importance from Jain Vastu Point of view?

3. The Post Parswanath-Mahaveera times North East part of India till today, (inspite of its little degradation in forms of Animal-sacrifices, Violence, present-day terrorism and the SATI tradition's blots) has preserved very rich Spiritual, Literary, Cultural, Scientific heritage of Indian Culture and Arts. This requires a Vast… Vast description. Only an indication is possible here. How many Luminaries this North-Eastern land has produced in all fields! That too in the present times only, after Saint Madhavdas in Assam and Chaitanya Mahaprabhu in Bengal...!! From Ramakrishna, Vivekananda and Ishwarchandra Vidyasagar-Raja Ram Mohan Roy to Sri Aurobindo, Bipinchandra Pal, Subhashchandra Bose, Jagdishchandra Basu, Khudiram Bose, Thakurdas Bang, Dhirendra Manjumdar, Jai Prakash Narain and Prabhavati Devi, Babu Rajendra Prasad, Devendranath and Rabindra Nath Tagore, Kshiti Mohan Sen, Nandalal Bose, Bankim Babu, Sharadchandra Chattopadhyay, Sarojini Naidu, Ma Anandamayee, Jagat Sheth, Ganesh Lalwani and K.C. Lalwani, Dr. Amartya Sen, Pankaj Mullik, K.C.Dey, Manna Dey, Pandit Ravishankar, Uday Shankar, Kanan Devi, Jyothika Roy, Suchitra Sen,

Satyajeet Roy, S.D.Burman, Ashok Kumar, Kishore Kumar, Hemant Kumar, Nandita Das, Shreya Ghoshal, , , …… How many to narrate! This list will remain incomplete….!! This does not mean that there is dearth of hundreds of Luminaries in other parts of India in present times like Srimad Rajchandra-Mahatma Gandhi-Swami Dayananda-Ravishankar Maharaj-Sardar Vallabhbhai, Pandit Omkarnath Thakur, Pandit Sukhlalji etc., in Gujarat, my native place, or several others in each and every corner of India. There are. But I mentioned here above a galaxy of Great Men in every walk of life in the North East, especially God-blessed Bengal, just to show that impact of *Deva Moole*, God's Corner bestowing the creative Cosmic Energy upon innumerable illustrious persons in various fields, in spite of poverty and life's other adversities!!!

Can one think what impact this *Deva Moole*, North East is leaving upon this part of India and its Creative People?

Being of utmost importance from our point of view in Jain Vaastu trend, we have discussed in length about North East, *Deva Moole*.

Similarly, we can go in depth about South East: *Agni Moole* also, but for want of space we shall stop here reminding our previously quoted Vaastu Chart which prescribes Kitchen, Boiler, Stairs, Latrine, Light Room, Trees, etc., in this corner of house.

But more important primarily than this is another aspect of Right Site Selection.

<u>Prime and important principle of Jain vastu -</u> selection of the right, pure, and faultless site: its clear effects and best or adverse results will become apparent instantaneously or in the long run.

MIND OUR DEAR READERS! First and foremost requirement as per Jain Vastu is 'procurement' and 'selection' of Right Site with subtle serious and careful tests. This primary requirement is being overlooked and buildings are being constructed on faulty sites. On such a site even all the principles of *Deva Moole, Agni Moole,* will not work much. The ways and tests of selecting right site are prescribed in detail at the beginning of this book in Hindi, which should be carefully studied and implemented or you can contact us personally for vaastu consultation and right guidance.

We are furnishing here some thrilling true examples of buildings constructed on faulty sites, impure sites, consisting of misdeeds, bones, and skeletons buried inside. They were not removed and cleared before construction and the impure evil spirits prevailing and existing over there caused several set-backs and damage to the residents staying there.

True Stories of
Faulty / Dirty Site Constructions

Don't you find soothing, pleasing, inspiring, tranquilizing and subliming vibrations, when you visit and enter some sacred, holy place? This may be a place of great persons' austerities or good deeds or meditation, etc., say, places of pilgrimages or so.

Similarly, don't you find uneasiness and suffocation when you visit some unholy, unworthy, dirty place? This means, the vibrations, good or bad, affect you at such places. Number of examples, all true and factual, that we have come across, will strengthen this point.

(1) At Bangalore: The Federation of Karnataka Chamber of Commerce Building on K.G.Road, witnessed an unusual incident. A Jain Muni arrived from Hampi, was to give a Discourse over there in its Lecture Hall (presently newly renovated). The Muniji was especially invited over there by the Elder brother of this Self with a view to enable larger masses to listen to his realized sermon speech. As soon as the holy Muni commenced to speak after the chanting of Namokar Mantra and Mangalika etc., he abruptly stopped and told the august audience: "My words do not come out here… I can't speak…". Worried audience and astonished brother inquired: "Why Gurudev..? What happened..?" Muniji clarified: "This is an unholy place… bones and skeletons are uttering from below the soil."

The earth below this platform place… .my speech on a spiritual subject finds hindrance in expression ! Will have to stop here.. ..Is there any other place to speak ?" He asked. "Yes Gurudev…… we shall take you to nearby Chickpet Jain Temple Hall" so saying this brother and other listeners accompanied him over there, where he could speak on some impressive serious subject, listening to which all were overwhelmed with joy. This incident proves the effects of bad vibrations at unholy places. On enquiries, it was found and proved that at this very place once in the past was a graveyard cemetery and hence naturally the skeletons and bones were hidden down over there... down below the earth.

(2) Again at Bangalore: In the densely populated central City area there is an another such unholy house.. People called it a 'Ghost House', since a few evil spirits were frequently ransacking it and frightening and harassing the residents whosoever used to occupy it. A close friend reported this true story to this writer. On deep inquiry and scrutiny it was found that some gamblers, drunkards and anti-social elements used to gather there, carry on dirty criminal activities including murders!..... They used to get more cruel and violent as soon as they entered this place. These originally criminals were boosted here by the hidden evil spirits to execute more and more cruelty and violence! Deeper inquiries revealed the root cause of it being in the uncleared, unpurified land site before the building construction……. Here too there were buried skeletons and that also of infighting murderous persons!!! The reactive vibrations of these all multiplied here and went on continuing and creating counter-criminal actions and activities over there.

Evil effects of such unholy places could be removed partially only by some great realised Holy Saints through Mantras, etc., and completely by demolishing such places, digging and extracting out the deeply hidden bones and skeletons (called "SHALYAS" in Jain Vaastu terms) and thereafter doing the purifying Mantra etc., acts.

(3) At Gokak in Karnataka: Above-referred Self-Realised Holy Saint Bhadra Muni (Y. Y. Sri Sahajanandaghanaji) of Hampi was previously undergoing solitary seeking over there. He was in seclusion and Silent Meditation for three years in a hilly cave. Some people brought a mad-man to him to get rid of the evil Ghost Spirit which had apparently taken hold of him. After great persuasion only the Muni agreed. Through his deeper insight he found out the root cause of this. It was lying in the unholy place like one mentioned hereabove where the mad man lived. On inquiries it was found to be true. Necessary skeleton-extraction from below the site and purification of the said place was done with simultaneous Rishimandal Mantra Chantings on the mad-man who was then cured.

(4) At Rajkot, Gujarat: A noble-hearted philanthrophic person donated is land for constructing a religious place and began the building nstruction. He was full of feelings of charity and public welfare and was nating his money also for this good cause. Without Vaastu-scrutinies of per testing of the site, he had commenced construction of the above-ntioned holy place. This was not intentional, but was done out of his er ignorance of the scientific and mathematical Vastu Principles. But, in e of his good efforts for a good cause, he suffered. His Vastu-faults took cost from him and snatched away his own self and another family mber by way of untimely deaths! His family members could realize this rwards. No doubt, the Vastu-faults were rectified thereafter and they sented a good place for the society, but their family heads had crificed their lives before seeing their dreams materialized! Since then, philanthropic family is following Vastu principles rigorously and just a back they invited this humble self for Vastu-scrutiny and detection of gerous faults (the "SHALYAS") as described in the beginning pages of book in Hindi under the heading of 'Testing of Site before its Selection' omi-Pariksha). Their remedies are also prescribed. Those who are

keen should follow them, possibly under direct guidance of a well-experienced Jain Vastu Consultant.

(5) Again at Bangalore there is a 169 years old pakka building. It was purchased from Bombay High Court in Auction in 1965 along with open garden land all around and was renovated thereafter in part keeping the "existing building" intact with its old tiles on the floor and the thick walls. The round about land was developed in the form of sites of a residential Layout, a decent, noteworthy layout, now known as Udani Layout, no doubt, the secrets of the topographical Vastu of which is studied and known by this writer. The mysteries of the said Existing Building, where stayed once upon a time Sir Winston Churchill, who was then at that time, the War Minister-Defence Minister of U.K., are known by a few people only. The underground "SHALYA" also is probably not detected and removed. But its effects prevailed throughout.

As a result, it was practically noticed that the hidden underground "Shalya" left its effects on the Warrior brain of Churchill residing then. Thereafter the following residents had-probably inherited the fighting waves and vibrations left by War-making Churchill, their predecessor! They had some quarrels and the building went to the Bombay High Court, from which the above developers-engineers and Contractors had purchased, as said hereabove in Auction and then developed.

These new buyer contractors also inherited their own troubles cropping up thereafter: Duping the noble-hearted Main Partner of the said Contractor firm, who himself had put his blood therein alongwith this writer brother-partner, by other unscrupulous own family relative partners! Thereafter litigations by severals… Motor Accidental Death of said noble brother-partner himself in 1970….fighting of several litigations and struggles by the undersigned to save and protect the interests of the Minors of above departed brother…and after coming out of these all saving brother's widow and family, what a contrasting pathetic plight that the same relative filed false and frivolous cases against this vary savior of theirs!!! What to say of such relationships of the world, and such ways of relatives, so called relatives!!! Philosophically not to blame them, but their own Karmas as certainly these are the ill-effects of the said residential place Vastu Only! Above this all when our own talented Gold Medalist Eldest daughter Parul (in 1988) also met with untimely Motor Accidental Death in her blooming youth, our suspicion about the Building's Vastu-faults was completely confirmed. Our respected Vastu Guides, Acharya Shri Jayantsensooriji and Gouru Tirupati Reddy to whom this book is dedicated, also graciously confirmed this and suggested the remedies to come out. We also tried the best. But here also in spite of this residence being our co-ownership one, the above shortsighted and foolish relatives created hurdles and didn't allow to carry on Vastu rectifications, which were in their interest also!.... But who will explain and convince such unsane persons? They had only the intoxication of ill-advised litigations on their frivolous minds…! Ultimately, keeping our activities alive over there along with out legal rightful claims through High Court Cases, our daughters and family changed residence elsewhere in Vastu selective place at this "Parul" building in Kumarswamy Layout, where we are peacefully flourishing and from North-East located site and premises these lines of untold story are reaching out confirming authenticity of vastu principles, which are thus self-tested in addition to scriptural studies and live Vastu Masters' guidance.

(6) The main seat of the Shwetamber Jain Adinath Temple in Chikpet, Bangalore was relocated from the old North to new deep south-west inside. The effects of Vastu - whether the changes were correct or not - only time will tell.

These are the true Vastu-Faults' Stories, a few from several, which took place in our native land of India. But what of other countries? Do the Vastu-principles apply their too? Someone has the reason to rightly question this.

Hence, it will be necessary and appropriate to quote only one or two from abroad. One is already narrated previously while discussing the Effects of North East side.

(7) This writer had privilege to visit USA's Siddhachalam founded by Acharya Sri Sushil Kumarji at Blairstown, N.J. several times. Out of his ...ve and trust he had invited me along with my little daughter Chi.Kinnari ...d wife Smt.Sumitra in 1984 to perform auspicious scriptural Rishimandal ...ahapujan at Siddhachalam. This grand occasion has remained an ...spiring one on our memories. During and before this visit, Acharyaji had ...rrated - how this excellent hilly resort was acquired and purified by him ...ntinuously. Current Rishi Mandal Mahapujan was also a part of it. This ...d was purchased from a Christian Church, which was using this as their ...igious resort-holiday home. But long back, wars were fought on this land. ...ood was shed and the bodies of warriors were buried there only below the ...th. Obviously there were skeletons and bones scattered here and there ...derground. Acharyaji had visualized and realized this. At some prime ...ces he had done necessary to remove the "Shalyas" and at some he had ...alled Jin Shashan Devatas like Manibhadra Veer and others. Due to such ... Rishimandal-Siddha Chakra Mahapujans purifying acts, ...dhachalam went on flourishing with a beautiful Jain Temple, Srimad ...chandra Swadhyaya Mandir and other holy premises and activities.

This is a true story example of rectified Vastu yielding good and positive results.

(8) Another one is exactly opposite to this. It speaks not only of untold stories of skeletons or dead bodies, but also of innumerable live bodies being slaughtered and their sighs emerging and emancipating from the newly built up building! This thrilling story is of New York's UNO Building where the World-Peace-Resolutions were and are being passed. This factual story is recorded as under in this author's - and his late daughter Parul-Priyavadini's book 'Why Abattoirs Abolition?' as under:

"During my first visit to U.S.A. in 1981. after presenting my Ahimsa songs and Speech at the First International Jain Conference at New York's United Nation's Plaza on Gandhi Jayanti Day 02-10-1981, I had the privilege to see the entire UNO Buildings, where world-peace-making resolutions were being enacted, made and passed. While commencing to visit the same, a question arose in my mind and I asked the Guide showing the premises that, "Inspite of Great Resolutions and efforts of the UNO, why Peace is not being established and Violence is not decreasing in the world...?"

"I shall reply to your question after you see the entire Buildings" saying so the Guide took us round the same. After showing everything, the Guide replied disclosing the surprising mystery, "You see, Sir! at this very place there was a huge Abattoir, carrying on Mass Slaughter of innumerable Animals daily. Their sighs, cries and tragic-most screams are as if hounding these premises in the atmosphere. They do not allow the decisions of world-peace taken over here to fructify and materialize...."

"This stunning reply had told us too much and moved our hearts then, reminding Tulsidasa's couplet: "Tulasi haay garib ki, kabhi na khaali jaay, mue dhor ke charma se loha bhasma ho jay..", clearly pointing to the ever-increasing, animal-sighs, multiplying gigantic Abattoirs.....! Shall we once again go deep into it and abolish them?"

This is another moving example of ill-effects of unholy places marked with tremendous bloodshed of dying crying sighing dumb animals. Building constructions and their utilization can never yield good results here.

To conclude the above mentioned true stories, we shall like to request you, the wisdomful readers, to study and implement the principles of Vastu. Let the wiser counsel prevail, let there be non-violent vibrations, let there be purity, prosperity and peace everywhere, let all be happy... *Shivamastu Sarvajagatah...! Om Shanti... Shanti... Shanti...*

Cosmos: Cosmic Prana Energy & Vastu

By Prof. PRATAPKUMAR J. TOLIYA

(Talk & Research Paper presented at the PRANANVESANA 14th International Conference, Bangalore, organized by Vivekananda Yoga Anusandhana Samsthana, VYASA OF VYOMA, at Prashanthi Nilayam on 18-21 Dec., 2003).

COSMOS:

Our Cosmos is full of infinite majesty, mysteries and energies. Our all-knowing Seers, Rishis, Sarvajna Tirthankaras realized this after their long long years of indepth, integrated, inner-outer investigations and explorations of Matter and Spirit. This was achieved in course of their meditations and realizations through perfect SPIRITUAL SCIENCE : Chaitanya Vijnan.

SPIRITUAL SCIENCE:

These all-integrated Spiritual Science investigations and revelations transcended all branches of Modern Material Science. Modern Science has had to accept principles of CHAITANYAVIJNAN. After years of ongoing researches and investigations of the Cosmos and its functioning laws, the conclusions derived by Nobel-prize winning modern Scientists have to match with the principles of this Spiritual Science. From Newton to Einstein and modern present-day Scientist has either to accept Spiritual Science Principles of Indian Rishis or to go on investigating without getting final conclusion. Researches of ATOM (ANU : PARAMANU), MOLECULE (SKANDHA), NEOTON ELECTRON and all are only true partly and they need the integrated wholeness of investigations of above-referred Indian Seers. With this short indication, we shall come to the subject of Cosmic Vastu.

COSMOLOGY:

Indian Seers' Cosmology, Particularly Jain Cosmology, has wonderful investigations and revelations with regard to Cosmic energies of "PRANA" hidden behind the Elements of Nature : Earth, Water, Fire, Air and Sky. These Panchabhootas have to act and inter-act with SHADASTIKAYAS, the six ASTIKAYAS—the existing Natural realities-of the Universe, which are:-

* JIVASTIKAYA: Soul or Spirit-based elements (Chaitanya)
* PUDGALASTIKAYA: Matter-based elements (Jada)
* AKASHASTIKAYA: Ether-based elements of Sky
* DHARMASTIKAYA: Motion-providing element of Movement

* ADHARMASTIKAYA: Non-Motion, stillness-providing element
* KALA: Element of TIME

The interaction-unification and separation of JIVASTIKAYA (Chaitanya : Spirit) and PUDGALASTIKAYA (Jada : Matter), is a mystery going on since Time Immemorial, but the aforesaid Great Indian Seers have solved the same through their all-pervading Super Knowledge. In course of this, "Cosmic Prana Energy" is their unique search. It is interesting to note here that Modern intuitive independent Spiritual Seer & Seeker Sushri Vimala Thakar, an Associate of Farsighted Independent Seer-Thinker J.Krishnamurthy and Acharya Vinoba Bhave-the Synthesiser-Seer of the Combination of Science and Spirituality, has called upon the Scientists and Spiritualists to find out the deeper relationship of the Matter and the Spirit with regard to element of ENERGY underneath.

<u>PANCHA BHOOTAS : THE FIVE ELEMENTS OF NATURE:</u>

Interaction and involvement of PANCHA BHOOTAS : The Five Elements of Nature with these SHADASTIKAYAS is very very interesting and worth studying. But leaving these all aside, we shall straightaway come here to the Five Elements and their balance. This applies on—

Universal Cosmic Level,
Earthly residential level and
Personal individual level.

Here comes the necessity and importance and need of the study of the Science of Vastu.

<u>VASTU:</u>

Vastu means to reside : Vasa.

- Think of whole vast Cosmos, the whole Universe as an entity
- Think: Amidst this vast majestic Cosmos, on this earth and piece of land we live upon and therein, is a small abode of our residing, called our Home, Sweet <u>Home.</u>

The Universal Cosmic Energy of PRANA existing in the Cosmos and being manifested in various forms should be right, appropriate, balanced one so far as the five elements are concerned.

Balance of PRANASHAKTI is important, also of PANCHABHOOTAS. Imbalance of it and misplacement of PANCHABHOOTAS cause the miseries and disasters on individual as well as Universal levels respectively.

<u>PRANA SHAKTI : PRANA ENERGY:</u>

For Pranashakti,* balance of 5 elements of Nature in Universe is necessary, balance of 5 Elements of Nature in Residential Place is necessary. We know the results of imbalances of these all through our own experience. The past human universal History and present happenings on the earth is vast cosmos, planets, stars, etc., all are worth-studying. We see with our own open eyes the results of Cosmic disorders. We experience with our own selves the results of our carelessness-born Universal environmental and individual physical imbalances. (to say in Medical Terms of Ayurveda "VISHAMA-DHATU ASANTULANA OF TRIDOSHAS OF VATA, PITTA & KAFA"...).

Similarly, the imbalances of five elements of Nature do not allow the natural free flow or impact of Universal Cosmic PRANA Energy in our Homes of Working Places. Say for example, the blockade of Eastern Direction prevents inflow of Solar Energy PRANA or Sunrays' life-giving, health-providing force in our Homes. This imbalance of PANCHABHOOTAS need application of Vastu principles. Placement - appropriate placement of these five elements in their right places, bring health, harmony, happiness, peace, prosperity and above all Meditative Joyous experience of life : "LIVING IN BODY-HOME and LEAVING THE BODY-HOME...!" with appropriate meaningful, balanced, meditative way : THE JOY & ART OF LIVING LIFE IN ITS INTEGRATED TOTALITY & CHARM AND FULFILMENT OF LEAVING THE BODY WITH JOY & CONTENTMENT OR DYING IN ESCTATIC STATE—the SAMADHIMARANA.

Lack of both of these (living and dying) is seen today in the lives of suffering human beings, who have no PRANA energy left with them.. what a pitiable plight and sight of humanity! COSMIC PRANA-WEALTH POSSESSING Indian Spiritual Science-based VASTU can contribute much in this respect—but it should be applied with VIVEK discretion.

As the balance of five elements within our body is necessary to be maintained for health, in the same way, balance of Five Elements of RIGHT PLACES is necessary and beneficial in the residing or working places of ours. Experiments have proved adverse effects of wrong placements of these elements while RIGHT PLACE PLACING have brought conductive and congenial flow of <u>PRANA</u> ENERGY and harmony, health, happiness, peace & prosperity.

To mention in nutshell, the VASTU principles have indicated the flow of Cosmic Pranic Energ.

Amidst these Five Elements' places of placements, the centre, say PYRA CENTRE is provider of PRANIC ENERGY (Which should be kept open and vacant). Still more powerful, if the roof-top of this building is covered with triangular PYRAMID TYPE TOP which brings and generates more Cosmis Prana.

With this brief indication only, before I conclude in this short paper-presentation, may I stress and suggest that keeping the PYRA CENTRE of your House will be extremely conductive to flow PRANA energy from the vast Cosmos. Further, sitting down below in the exact Pyra-Centre of a Pyramid-Type-structural building, experiments have proved clear PRANA FLOW leading to peace, tranquility, balance of mood and mind and higher Meditational benefits of Spiritual Elevation. Centre, Centre-Pyracentre of any Temple or place of Worship and sitting below there in exactly Middle Place or in the North East-Devamoole Corner- will prove this. If natural Caves (just like one and many in nearby Hampi) or such rare Temples (just like Moodbidri Jain Temples, having rare Pyramid-shape roof-tops or this shape, are sure to bring Peace, prosperity and Spiritual Sublimation more powerfully.

Again, to stress further; as popularly said of "DEVA MOOLE", the North East direction is primarily meant for God's Devotion and Meditation: Spiritual activities. Sitting in N.E., i.e., facing N.E.direction has experimentally proved the inflow of Spiritual waves and vibrations. A number of experiments of several seekers are there, but one can himself or herself find this out by one's own experiment and experience this by correctly sitting in apt Yogic postures like Padmasana or Vajrasana with spine erect. Similarly, cooking with fire, gas, etc., in AGNI MOOLE, the South East direction has its own beneficial effects and vice-versa.

This indication of Vastu-based PRANA Energy, could be experienced through above-referred practical experiments which will lead to betterment of our life and humanity. May all get this PRANA ENERGY through right placements of our bodies and things in the right places as per Vastu.

Om Shanti.............. Om Shanti............ Om Shanti........

Vastu Principles in a nutshell

Your Home: Pointers for construction and location
(Vaastu Chart simplified)

- ✓ Place Deity (Pooja / Meditation) Room in the North East - *deva moole*; Water Sump (ground level tank) should also be in this part.
- ✓ Install main door - Simha dwar - main Entrance in the East; This part is suitable for Bathroom (but not Latrine).
- ✓ Main door - Simha dwar - main Entrance may optionally be installed in the North.
- ✓ North is the place for storing wealth (ornaments, money, valuables etc.) and weapons (implements). Almirahs or storage could be placed along the southern side wall facing North in such a way that weight in the North is kept to the minimum.
- ✓ North-west is suitable for storing all machinery - instruments.
- ✓ West is more suited for dining hall where seating should be facing the East.
- ✓ Kitchen, especially the cooking gas stove / fire should be in the South East corner - *agni moole*.
- ✓ South-west is meant for bedroom - master and general bedrooms.
- ✓ Toilets - Latrines with water should be in the South West, also in the South and North West.
- ✓ There should be vacant empty place in the middle, in the centre of the house. It is the Pyra Centre of the House where all the cosmic energies flow, enter and spread from. If possible, a pyramid-shaped roof could be constructed in the centre on the top of the house or temples. In fact, nearly all the temples have sharp Pyramid-shaped, sky-pointing summits (shikhar) which are significant and purposeful. Sitting down below such pyramid-roof in the centre in meditation, brings positive cosmic vibrations and enables concentration and deeper spiritual meditative experience. Such pyramid-shaped temples or homes or buildings and even natural caves provide such useful opportunities, which one can avail of.
- ✓ It is better to avoid Main Door or Gate or even any normal door coming in the South. It is Yama-dwara disha. If at all a door is inevitable in this

direction, it should be in the 5th or 3rd part of the 8 parts of this direction. Never place door in the South-east and South-west corners and directions.

- ✓ Before constructing any new house or building or temple, first and foremost importance is of the selection of right, faultless, pure, and auspicious site.
- ✓ Significant tests and hints for such a proper site selection are minutely specified in the Hindi section of this book. This is typical and prime factor and essential requirement of Jain Vaastu principles. Better consult a well-studies, experienced, seasoned and far-sighted Jain Vaastu consultant before selecting your site for a promising precious construction.
- ✓ Let your right site, from very inception be a base for your residence providing peace, prosperity and health. May you all be happy!

Shivamastu sarva jagatah . . .

While concluding . . .

With this ancient and "all-time pervading" basic Vaastu principles (e.g. in respect of site-selection, square or rectangle sites are best to be selected) some discretion is to be used in modern times. Say, here particular colour of site is prescribed for different communities like Brahmin, Kshatriya, etc. This prescription will not apply completely in present times.

If so, who is a Brahmin? One who knows 'Brahman' (atma), who is pure in conduct, action and habits etc., who is free from violence etc., is a real Brahmin. Similarly, one who follows truth and honesty is a real Vaishya and so on. Such interpretation and discretion is tobe applied thoughtfully.

Secondly, as regards astrological suggestions - prescriptions also, purushartha (efforts) and pavitrata (purity) is to be given preference, which is one of the very important factors of Five principles (pancha samavaya) as per the Jain Philosophy.

Indication of Astrology i.e. jyotishya suchana is alright, but result-prescription i.e. jyotishya phalita is not always correct. Purushartha and Sankalpa can change it. Here too discretion (viveka) should be applied.

Thirdly, simple laws of Nature related to pancha mahabhootas, which are the basis of Vaastu and those of human body and natural living, are to be followed and applied while constructing or arranging a house and locating things at their right places.

To stress again , there should be ample provision of sunshine and solar energy to enter the house from the East, which brings in health and wealth and peace and prosperity. Similarly, for other natural elements such as water, wind-air, sky - empty spaces and fire, these right-placement principles of Vaastu and Nature are to be applied everywhere (irrespective of what country one is in). These principles apply always and are very relevant even in today's times. They will bring in eternal happiness and peace.

Let all be happy and acquire self-knowledge (atma-jnana) through the proper placement of the pancha mahabhootas (five-elements) at home and inside the 'body-home' also.

Om shanti . . .

SAPTABHASHI ATMASIDDHI

RELEASE OF SEPTI-LINGUAL BOOK "SAPTABHASHI ATMASIDDHI" (VERSE TRANSLATIONS).

ORIGINALLY WRITTEN BY SRIMAD RAJCHANDRAJI, M. GANDHIJI'S SPIRITUAL GUIDE, ON KARTIK POORNIMA, THE FORMER'S BIRTH ANNIVERSARY AT BANGALORE.

"SRI ATMASIDDHI SHASHTRA" original in Gujarati is the essence of all the Six schools of Indian Philosophy. It was written in a rare ecstatic mood of self realisation in a spontaneous overflow of sublime spiritual experience 105 years ago by Great Modern Jain Seer and Mahatma Gandhiji's SPIRITUAL Guide (about whom M. Gandhiji himself has written exclusively and respectfully in his autobiography, "The Story of my Experiments with Truth"), whose Birth Centenary has recently been concluded. HE WAS SRIMAD RAJCHANDRAJI.

Srimad Rajchandraji's dedicated follower and founder of Srimad Rajchandra Ashram at Hampi, Karnataka, Yogindra Yugpradhan Sri Sahajanandghanji Maharaj (Bhadra Muni, a secular Jain Saint) was an enlightened modern seer with Great Vision. He visualized the need of such a secular spiritual work like SRI ATMASIDDHI shastra to be brought out for the multilingual common seekers out of Gujarat in Karnataka, India and Vast World, since till now it was confined to Gujarati only, the mother tongue of Srimad Rajchandraji and Mahatma Gandhiji, both of whom were above narrow fragments of languages and religions.

Hence Sri Sahajanandaghanji resolved to carry out his vision farsightedly into action. 31 years ago before he breathed his last in Samadhi, he initiated and inspired at HAMPI, Prof. Pratap Kumar Toliya, Ex-Professor of Mahatma Gandhiji's Gujarat Vidyapith at Ahmedabad and settled in Karnataka since 1970, to undertake multilingual editing & translating of SRI ATMASIDDHI.

Accordingly Sri Sahajanandaghanji and Prof. Toliya both planned a project to initially begin with seven languages, viz., Original Gujarati, Hindi, Kannada, English, Sanskrit, Marathi and Bangla. Though Sri Sahajanandaghanji himself had earlier done Hindi translation, he inspired Prof. Toliya to commence fresh one in Hindi and English, which he himself went on correcting to bring the soul and spirit of original Gujarati work in it. In the meanwhile the former left the body, the work remained inconcluded for some time and with Sri Sahajanandghanji's ascendant Holy Mother of Hampi Ashram and Padmabhooshan Pragyachakshu Dr. PANDIT SUKHLALJI's worthy guidance, Prof. Pratap Kumar Toliya went on striving further in the direction. Firstly he brought out Sri Sahajanandghanji's Hindi translation along with Gujarati and released it along with his everfirst L.P. Record (now C.D.) Of SRI ATMASIDDHI SHASHTRA in 1974.

Then he went on collecting other lingual translations done by various scholars, such as the one by Dr. A.N. Upadhye in Kannada where no translations were available, he approached and inspired other lingual scholars like Sri Bhawarlal Nahata of Calcutta, who aptly and especially did Bengali Translation and sent to him for this project of SAPTABHASHI ATMASIDDHI. On one hand there were so many problems of correcting and adequating every lingual work befitting the original one, since all these parallel translations, except the Kannada one, were in VERSE, just as the original Gujarati. On the other hand there were difficulties of Funds, which remained till the ends, since the rites and rituals - bound otherwise spendthrift society of our times does not bother to see the eternal utility of such a work's Universal Appeal and usage. The traditional people, organisations and Ashramas, including even the one at Hampi, the Initiators own founding, were not bothered to fund this project. The above Editor had his tests. But the order, message, wish and blessings of the departed Master were with him. He went on, inspite of the odds and adversities at every step, with firm resolution.

Thereafter in 1996, during "ATMASIDDHI CENTENARY CELEBRATION" at Chicago, U.S.A. (Which commenced at San Fransisco for year long programmes) SAPTABHASHI ATMASIDDHI'S First Manuscript was released internationally before printed publication. Editor Prof. Toliya by remaining present over there gave the particulars to the meeting Audience as well as to the Press of Chicago, a Press Brief of which and some photos are reproduced in the present published work.

Vidushi Vimala Thakar, an ardent associate of Philosopher Sri J. Krishnamurti and Acharya Vinoba Bhave, has written a befitting Introductory Preface, describing this Gem of Books as worthy of study by every Genuine Sadhaka - a seeker of the Self. The Appendixes contain Mahatma Gandhiji's noteworthy relationship with Srimad Rajchandraji, the High Calibre author. It was VIMALA Deedi who encouraged the editor in all respects, to complete this project.

Ultimately now during the PARAM SAMADHI CENTENARY OF SRIMAD RAJCHANDRAJI's passing away and 2600th BHAGAWAN MAHAVEERA BIRTH ANNIVERSARY CELEBRATIONS, SAPTABHASHI ATMASIDDHI acquired perfect printed publishing form and after 31 years of striving hard, it could see the light of the day. It was majestically released on very auspicious day of KARTIK POORNIMA, SRIMAD RAJCHANDRAJI and KALIKAL SARVAGYA ACHARYA HEMACHANDRAJI's BIRTHDAY (also of GURU NANAK) and pious SIDDHACHALA YATRA TITHI, at Bangalore in the sacred presence of Jain Acharya Sri CHANDRANANA SAGARJI, whose enchanting Speech of MANGALIKA is drawing thousands of listeners every month. Studious seeker Sri Ashok Sanghvi while releasing it open threw light on the Universal relativity and utility of this Septi-lingual Verse Form and applauded the efforts of Prof. Toliya giving his various

contribution's details. The Acharyaji also commended the Editor's Spiritual, Literary and Musical contributions to the society.

SAPTABHASHI ATMASIDDHI has a long history of its 31 years of strivings, tests and trials, a glimpse of which could be sensed from the pages of this work. Apart from parallel verse translations of original ATMASIDDHI SHASTRA in Gujarati, Sanskrit, Hindi, Marathi, Bengali, Kannada & English, there are researchful critical notes on the creations, Author, Inspirers, Translators in 200 Demi Size (A4) pages with Picture plates of Mahatma Gandhiji and Srimad Rajachandraji and beautiful coloured title cover.

Additionally an outline of the Publishers' (JINA BHARATI : Vardhaman Bharati International Foundation's activities and Literary & Spiritual-Musical Contributions) Who have to their credits a long history of Monumental oriental creations of Recordings of the same ATMASIDDHI SHASTRA and SRI BHAKTAMAR STOTRA, KALYAN MANDIR STOTRA DHYAN SANGIT - MUSIC FOR MEDITATION, ISHOPANISHAD-OM TATSAT, etc. (which was released earlier by the then Prime Minister Sri Moraji Desai) from 1970, 1974, 1976, 1996 to 2001 this glimpse speaks volumes of the said spiritual-cultural activity which has run throughout without any grants, Funds or Donations from Philanthropists !!

The released work of SAPTABHASHI ATMASIDDHI, being a precious Creation is very reasonably priced at Rs. 301/- in India and $ 51 Abroad. This international edition contains the above translation of the original work in KANNADA also for the benefit of Kannada readers. The Kannada version was prepared by Great Scholar Dr. A.N. Upadhye and revised and abridged by present scholar Principal Dr. M.A. Jayachandra, which is a worth-studying.

The copies of SAPTABHASHI ATMASIDDHI (and also the Compact Discs and Cassettes of ATMASIDDHI and other creations, if needed, are available from Vardhaman Bharati International Foundations's City Office at PRABHAT COMPLEX, K.G. ROAD, BANGALORE-560009 (PH: 080-22251552) or KUMAR SWAMY LAYOUT (PH: 080-26667882) offices by crossed D.D.s or M.O.s or Cash remittances. Outstation despatches will require postage extra. In USA they can be ordered in advance to 1. Sri Mukund Mehta (Ph : 781-344-6030) 2. Mahaveer World Vision : Dr. Salgia (PH : 614-899-2678).

Any further inquiries required may kindly be acquired from the above Phone Nos. Or Offices.

- JINA BHARATI, Bangalore (E-Mail : prataptoliya@bsnl.in)

Prof. Pratapkumar J. Toliya, M.A.HINDI; M.A.ENG.; SAHITYA RATNA, JAIN SANGEET RATNA, served as Principal / Professor in Gujarat and Bangalore for 18 years. Teaming up with his scholarly, musician life-partner **Smt. Sumitra P. Toliya**, M.A., SANGEET VISHARAD, formerly LECTURER, Prof. Toliya has translated and authored several books in Hindi, English and Gujarati on Jain philosophy and allied subjects. They have also rendered and produced more than 100 Jain spiritual-meditational music albums.

This book on Vastu, based on an original ancient Prakrit treatise, containing the modern perspective including pyramid-based PyraVastu, along with the experience and insight the Toliyas have gained from great Vastu exponents and their own extensive study of scriptures, will prove invaluable to all those following this subject.

PyraVastuEXPERT

This is to acknowledge that

Prof. Pratap Kumar J. Toliya

who has fulfilled the qualifying requirements, and is entitled to the degree of

PyraVastu-Expert

By successful completion of the Advance workshop on PyraVastu.

acquiring in depth knowledge of Pyramids, Vastu, Yantra &

Feng Shui on 22nd & 23rd Nov. 03 at Bangalore

This also signifies the beginning of a great journey within.

opening an entirely new world outside

Prof. Dr. Jiten Bhatt.

RAMAN & RAJESWARI RESEARCH FOUNDATION (Regd.)

FIRST ALL INDIA SYMPOSIUM ON VASTU - JUNE 3,4 1995

ENTRY PASS INTO BANQUET HALL OF VIDHANA SOUDHA
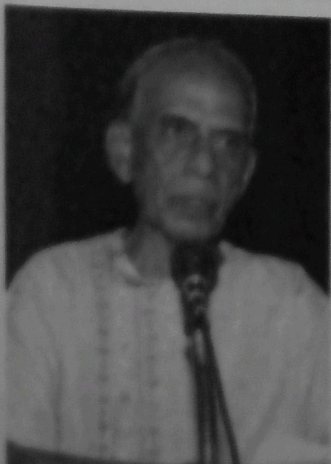
CODE: 602
Prof. PRATAP KUMAR TOLIYA
Vardhaman Bharati Prabhat
Complex, K.G. Road,
BANGALORE 560009

प्रो. प्रतापकुमार टोलिया – सुमित्रा प्र. टोलिया

द्वारा सम्पादित–अनुवादित

जैन वास्तुसार

गृहादि वास्तु - जिन प्रतिमा–मानादि एवं - जिनप्रासाद वास्तु–शिल्प

'वास्तुसार प्रकरणादि' जैन–अन्य प्राचीन–अर्वाचीन ग्रंथों के अध्ययन, गुरुगम एवं स्वानुभव–निरीक्षणाधारित सर्वोपयोगी ग्रंथसंक्षेप।

''भाई प्रतापकुमारजी टोलिया ने इस कृति का हिन्दी अनुवाद एवं पुनः सम्पादन किया है, एतदर्थ हमारी ओर से उनके कार्य हेतू हार्दिक अभिनन्दन एवं आशीर्वाद हैं।''

—[signature]

३०/४/२००९

पू. कविमनीषि राष्ट्रसंत आचार्यश्री वास्तु–शिल्पज्ञ जयंतसेनसूरीश्वरजी

इस परिश्रमपूर्ण ज्ञान–किरण रूप सृजन का पठन–अध्ययन नया ज्ञान देकर आपके भीतर विवेक की शक्ति जगाएगा, अपनी समस्याएँ स्वयं सुलझाने की अंतर्दृष्टि देगा, अनेक गृह–वास्तु–दोषों से बचाकर, मंदिर की भी आशातनाओं से ऊपर उठाकर, प्रतीक्षा कर रही अनेक लौकिक–लोकोत्तर सिद्धियों के द्वार को दिखाएगा।

जनसामान्य के प्रत्येक व्यक्ति के लिए, विशेषकर श्रावक–श्राविका के लिए, गृहवास्तु का हिस्सा; प्रत्येक प्रभुप्रतिमा पूजक के लिए जिनप्रतिमा–मानादि का विभाग एवं जिनप्रासाद का वास्तुशिल्प का शास्त्रीय सिद्धांत ज्ञान प्रत्येक मंदिर–ट्रस्टी, विधिकारक, शिल्पी, जिज्ञासु को उपयोगी एवं उपकारक होगा। इनमें से कोई न कोई बात प्रत्येक जन को किसी न किसी रूप से उपादेय - अपनाने योग्य न लगी तो संपादक–लेखक अपना परिश्रम निष्फल समझेंगे।

इस निष्कर्ष वास्तुग्रंथ के जन–जन के लिए सारगर्भित उक्त तीन विभागों में भूमिचयन - भूमिपरिक्षा से लेकर संपूर्ण भवन–निर्माण तक के पद–पद पर उपयोगी एवं उपादेय ऐसा मार्गदर्शन भरा पड़ा है। प्राचीन जैनविद्या वास्तु–ग्रंथों के उपरान्त अर्वाचीन वास्तु–विज्ञान का समन्वय एवं सारसंक्षेप इस में आप पाएँगे। प्रत्येक जन के लिए निर्मित यह 'जन–जन का वास्तुसार' ग्रंथ उसमें निहित चित्र–अंकनों (charts) के साथ त्वरित मार्ग–दर्शिका (Ready Reference Handbook) का कार्य करेगा, जो आप स्वयं अपने अनुभव से देखेंगे।

आवरण चित्र : वास्तुशिल्प का अनुपम नमूना - श्री शत्रुंजय तीर्थ जिनालयसमूह

Also contains a few useful articles presenting the uniqueness and the essence of Jain Vastu principles in English.

जिनभारती

वर्धमान भारती इन्टरनेशनल फाउन्डेशन

प्रभात काम्पलेक्स, के.जी. रोड़, बेंगलोर - ५६० ००९

दूरभाष: ०८०–[illegible] / २६६६ ७८८२ / ६५९५ ३४४०

ISBN 81-901341-10